तुलसीदास नाटक

बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०

गोस्वामी तुलसीदास

(नाटक)



लेखक—

बदरीनाथ भट्ट बी॰ ए॰



प्रकाशक—

रामभूषण पुस्तकालय,

गोकुलपुरा, आगरा ।

पहला संस्करण १९२२ मूल्य १)

सजिल्द १।)

प्रकाशक
रामभूषण पुस्तकालय,
गोकुलपुरा, आगरा ।



मुद्रक :—
कृष्णकुमार शर्मा,
श्रीजगन्नाथ प्रेस,
४७, चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता ।



परम पूजनीय रामभक्तशिरोमणि

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी

निवेदन

—:०:—

इस पुस्तक में 'राम चरितमानस,' 'विनय पत्रिका' आदि के सुप्रसिद्ध लेखक गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी की कुछ जीवन घटनाओं को दृश्य-काव्य का रूप देने की चेष्टा की गई है। किसी विशेष कथानक की नींव पर इस नाटक की इमारत खड़ी नहीं की गई है इस लिये मेरा विश्वास है कि इस में, नाट्य शास्त्र की दृष्टि से, कितनी ही त्रुटियाँ रह गई होंगी। इस में बहुत कुछ मसाला मैं ने अपनी तरफ़ से भी मिला दिया है जो, सम्भव है, पाठकों को रुचिकर न हो। इस में मीराबाई, माधवदास, नाभाजी आदि से गोस्वामी जी की भेट होने के दृश्य भी मैं ने लिखे थे परन्तु वे इस भयसे नहीं दिये कि पुस्तक बड़ी हो जाती, हालाँकि उनका रोक लेना मुझे ख़ुद अखरता है। इतना होने पर भी यदि यह पुस्तक आपका कुछ मनोरञ्जन कर सकी तो मैं अपना परिश्रम सफल हुआ समझूँगा।

आगरा,

माघ की अमावस,

सम्वत् १९७८।

बदरीनाथ भट्ट।

नाटक के कुछ मुख्य पात्र।

—:o:—

पुरुष :—

गोस्वामी तुलसीदास

नरहरिदास—तुलसीदास जी के गुरु।

लूटमाल सिंह—बिन्ध्य देश का राजा।

बुधुआ, सुधुआ—गुन्डे, जो पीछे से तुलसीदास जी के शिष्य हो गये।

कुँवर—लूटमाल सिंह का पुत्र।

ख़ानख़ाना—अकबर का मन्त्री जो बाद को संन्यासी हो गया।

मेघा—तुलसीदास जी का समकालीन एक भक्त।

राम-लक्ष्मण, हनुमान जी, प्रेत, परसराम ब्राह्मण, सेठ, तुलसीदास जी के गुरु भाई, तुलसीदासजी का साला, चोर, मन्त्री, वैद्य, पंडित, पागल ब्राह्मण, गुसाईं पियूलाल, अकबर, मानसिंह, बीरबल, ग़ुलाम, मस्तान शाह, वैद्य, शिष्य, कप्तान, मेजर, इत्यादि।

स्त्री :—

रत्नावली—तुलसीदास जी की स्त्री।

रानी—लूटमालसिंह की रानी।

बुधना—मेघा भगत की स्त्री।

चन्द्रा—रत्नावली की सहेली।

सेठानी, बाँदी, नटी इत्यादि।

❁ तुलसीदास नाटक ❁

पहला अंक

(सूत्रधार, नटी, नट आदि प्रार्थना करते हैं:—)

निराकार निर्विकार, जग-नाटक सूत्रधार—
लीलासे नररूप धर, कौतुक किये अनेक,
है अनेक तू एक में, है अनेक में एक।
विविध रूप विविध नाम, विविध चरित हैं ललाम,
अज अकाम दया-धाम, वेद कथित एक सार ।१।
निराकार०—
गज, गनिका, शबरी तथा नारद, ध्रुव, प्रह्लाद,
नरसी तुलसी सूर के मेटे सकल विषाद—
भक्त-हृदय-कृत-निवास, जग है तव मधुर हास,
निज दासोंके सुदास, भक्ति-मुक्ति-प्रेमागार ।२।
निराकार०—
जागे हिन्दू जाति फिर, भेद विरोध विसार,

प्यारी भारतभूमि पर, तन मन करे निसार।
सुख यश का हो प्रसार, बिगड़े का हो सुधार,
उतरे दासत्व-भार, बेड़ा हो जाय पार ।३। निरा०

(सूत्रधार और नटीके सिवा औरों का जाना)

सूत्र०—अहा, आज यहां भक्त-जनों की कैसी भीड़ लगी है! वाह, आज इन्हें कौनसा खेल दिखाऊं? कैसे इनका जी बहलाऊं? ऐसा मनमें आता है कि किसी भक्तका चरित्र दरसाऊं और यों इन्हें रिझाऊं।

नटी—हाँ स्वामी, आपने ठीक कहा। हमको कोई धार्मिक नाटक ही खेलना चाहिये, क्योंकि लोग अब दिन पर दिन धर्म के पथ से भटक कर अपनी सीधी सादी रहन सहन और सीधे सादे चाल चलन से दूर होते चले जा रहे हैं। जहां किसी ज़माने में बड़े बड़े प्रतापी ब्रह्मचारी और तेजस्वी पुरुष दिखाई पड़ते थे वहां आज दुराचारी और मुरझाये हुए खुशामदी ही नज़र आरहे हैं। शोक!

सूत्र०—ठीक है, प्यारी, तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। तो आज किसी भक्तराजका ऐसा चरित्र दरसाओ जिससे देखनेवालों का मन और बुद्धि निर्मल होजावे, और जिससे उनके चरित्रमें दृढ़ता आवे, और उनकी बुद्धि की नाव संसार-सागरमें लोभ और लालच के

आँधी-तूफान से न डिगमिगावे। तो बोलो किस भक्त-राज का चरित्र आज दरसाओगी ?

नटी—मेरी राय में गोस्वामी तुलसीदास—

सूत्र०—(बीच ही में) तुलसीदास ? अहा! धन्य तुलसीदास!

(गाना)

श्रीराम के चरित का तुमने अमृत पिलाया,
थी आर्य-जाति मरती, फिरसे इसे जिलाया।
कर भक्ति-पौन शीतल,
कुछ प्रेम-जल छिड़ककर,
जड़ बुद्धि-बेल में है गुल ज्ञान का खिलाया।
कलजुग के कोप से जन सब भ्रष्ट होरहे थे,
पहुंचा के राम-गंगा घर घर उन्हें न्हिलाया।
जो रम रहा है सब में, फिर भी छिपा हुआ है,
कुछ बात कहते कहते उससे हमें मिलाया।

भला ऐसे महात्मा के गुन पूरी तरह से कौन गा सकता है ? और कौन उनका चरित्र अच्छी तरह दरसाने को नाटक बना सकता है ?

नटी—आपका कहना ठीक है, पर हाल में ही एक शख़्स ने हिन्दी में ऐसा नाटक लिखने का साहस किया है और उसे, खेलने के लिये, मुझे दिया है।

सूल०—अजी वह रद्दी नाटक तो मैंने भी पढ़ा है। उसमें तो प्लाट आट सब गड़बड़ है, और सीन-सीनरी भी ठीक नहीं। भला सोचो तो कि—

ऐसा बेढब खेल खेलकर किस का मन बहलाओगी,
मुझे दीखता है, उलटी बदनामी और कराओगी।

नटी—आपका कहना ठीक है; मगर ऐसे खेलों की कमी देखकर ही लेखक ने, अपनी योग्यता के अनुसार, यह भला-बुरा नाटक लिख डाला है, इसलिये—

इसे खेल कर आज चलो उसका उत्साह बढ़ावें हम,
काट-कूट कर, ठीक-ठाक कर अपना काम चलावें हम

सूल०—तुम्हारी ऐसी मर्ज़ी है तो योंही सही। चलो—लेकिन एक बात का खयाल रखना।

नटी—काहे का?

सूल०—भाषा का। यानी तुलसीदास के चरित्र से उपदेश ग्रहण करने की चाहना रखने वाले लोग पढ़े-लिखे भी हैं और बेपढ़े भी। जो पढ़े-लिखे हैं वे तो अपनी विद्या का बल तरह तरह की पुस्तकें पढ़कर बढ़ाते रहते हैं, मगर बेचारे बेपढ़ों का कोई वसीला नहीं। इसलिये जहांतक होसके ऐसी भाषा से काम लेना जिसे अपढ़ व कमपढ़े लोग भी कुछ न कुछ समझलें, क्योंकि नाटक

कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसे देखते वक्त लोग कोष, लुग़त या डिक्शनरी से मदद ले सकें।

नटी—स्वामी, आप ख़ातिर जमा रखिये, मैंने इसके बारेमें पहले ही सोच लिया है और गुंजायश देखकर भाषा को जहाँ तहाँ सहज कर दिया है। चाहे पण्डित लोग भलेही नाक-भौं सिकोड़ें पर हमें तो अपनी भूली-भटकी जाति को सरल भाषा में अच्छा आदर्श दिखाना है।

सूत्र०—तो बस ठीक है। इस सर्व-शक्ति-सम्पन्न आर्य जाति को छिन्न-भिन्न करने के लिये, इसके सुन्दर भवन में भाई से भाई को अलग करने के लिये, पानी की, दूध की—कच्ची और पक्की रसोई की—छुआछूत की, झूठे घमंड की और ऐसी ही अनेक प्रकार की जो दीवारें सैकड़ों हज़ारों बरस के अज्ञान के कारण खड़ी होगई हैं उनकी जड़ हिला देना और ढहा देना हमारा धर्म है। हा, कञ्चन सी जाति मिट्टी होगई है!

दोनों—(जाते हुए) (गाना)

हा कैसा पलटा खाया,
खो डाला सारा चरित्र-बल,
गौरव सभी भुलाया।
धर्म, कर्म का ढोंग रचाया,
प्रेम-भाव का नाम मिटाया,

रावण को आदर्श बनाया,
मन से राम हटाया। १ ।हा कैसा०
कुसमय का हैं राग गारहे,
अमृत समझ कर ज़हर खारहे,
हँसी हँसी में मरे जारहे,
किसने नशा पिलाया। २ । हा कैसा०

(गये)

सीन १

स्थान—तुलसीदास के घर का दरवाज़ा

(प्रवेश तुलसीदास के साले का)

साला—कलजुग की माया है। जे भी वखत आगया कै माँ-बाप का अपनी लड़की पै और भाई का अपनी भैन पै कुछ भी अखत्यार नहीं रहा! किसी को लड़की देना अपने सिर एक आफत मोल लेना है। लड़की को लड़की दो और जनम भर दबो! नहीं, तुम जिसे लड़की दो वो तुम्हें उसके बदले में (हाथ का इशारा करता हुआ) दै लकड़ी! दै लकड़ी! जनम भर तुम्हारी खाल उधेड़े! हे भगवान, लड़की न देकर तू उसके बदले

में लकड़ी दिया करे तो अच्छा, जो चोरों और लुटेरों को, कुत्ते और बिल्ली को मारने में—और कुछ नहीं तो, जला कर दो रोटी सेकने के काम में तो आवै। वाह, लकड़ी खुद जल कर दूसरों के लिये भोजन तैयार करती है—उन्हें तिरपित करती है; लड़की भी खुद जनम भर दुख पाकर दूसरों की सेवा में ही लगी रहती है—न उसके जनम लेनेपर कोई खुशी मनाता है और न इसके! जंगल में लकड़ी का होना और घर में लड़की का होना एक ही बात है। इतनी देर रोया-गाया, खुशामद की, सिर फोड़ा, मगर तो भी बहन रत्नावली की विदा नहीं करते!

(प्रवेश तुलसीदास का)

तुलसी०—और तुम जो कहते हो कि इतनी चिट्ठियाँ भेजीं और उतनी चिट्ठियाँ भेजीं सो भला चिट्ठियाँ भेजना कौन मुश्किल बात है। चाहूं तो दस बीस चिट्ठियाँ मैं भी रोज़ भेज सकता हूं। भला तुमने कभी यह भी सोचा कि उसके पहुंचा आने से मेरा कितना हर्ज होगा। सबेरे भीख माँगता हूं, दोपहर को मेहनत-मज़दूरी करता हूं तब कहीं शाम को पकी पकायी रोटी मिलती है; तुम चाहते हो वह भी न मिले। काम पर से दिनभर का थका-माँदा मारा-धाड़ा आऊँ और आते ही चूल्हे के सामने

हट जाऊँ ! भला यह भी कोई बात है? इस स्वार्थ का भी कुछ ठिकाना है? और हाल तो तुम्हारे यहाँ काम ही ऐसा कौनसा है जो अभी हाल में ही वहाँ उसकी ज़रूरत है?

साला—जे तो तुमने ठीक कही, हमारे यहाँ तो कुछ खास काम नहीं, पर पड़ोस में तो है। कन्हाई के भाई का मूड़न है, हाऊ के ताऊ का तीसरा व्याह है, और भी कैई काम हैं। और जब इत्ते दिनों सै रत्नावली यहाँ है तो छोटे मोटे वहाने बना कै उसको न भेजना भी एक हठ ही है। भला मैं इत्ती दूर सै हैरान हुआ हूं, इसी का कुछ विचार करते।

तुलसी०—यह भी ख़ूब कही। तुम इतनी दूर से हैरान हुए हो इसका मैं विचार करूँ, और मैं जो इतनी दूर जाकर रोज़ मेहनत-मज़दूरी करता हूं, उसका तुम कुछ भी विचार न करो! बस, मैं तो पहले भी लिख चुका था और सो ही अब भी कहता हूं, कि न भेजूँगा, हरगिज़ न भेजूंगा। तुम्हारा घर है, ठहरो, न्हाओ, धोओ, खाओ पीओ, आराम करो, जब तुम्हारी इच्छा हो चले जाना। मैं भेजूँगा तो हूं नहीं।

साला—भला इस ज़िद्द के सामने—

(किवाड़ खोलकर रत्नावली का प्रवेश)

रत्नावली—(चहरे पर उदासी लिये) तो मसाले भी निबट गये हैं,

घी भी नहीं रहा है, आज हाट जाना हो तो ले आना।

तुलसी०—अच्छा अभी जाते हैं, ज़रा हमारा झोला और डंडा तो ले आओ (रत्नावली अन्दर से झोला और डन्डा लाकर देती है ; साले से) गुड़ खाओ, पानी वानी पिओ, आराम करो, मैं कोई घंटे भर में आऊंगा। (गये)

रत्नावली—(रोकर) भैया, क्या करूं ! (रोती है) मेरा मन वहाँ सब लोगों को देखने को बहुत करै है, पर क्या करूँ ? मैंने पहले भी बहुत समझाया था पर माने ही नहीं। महीना दो महीना जाने दो, दस पाँच दिन के लिये भी नहीं भेजते।

भाई—क्या किया जाय, कुछ बस नहीं। अब देख मैं भी इत्ती दूर सै हैरान हुआ। (कुछ सोचकर) क्योंरी, जो तू चुप-चाप मेरे साथ अभी चली चलै तो जे क्या करैं ? तुझे तंग तौ नहीं करैं ?

रत्ना०—भैया, ऐसा कहीं हो सकै है ?

भाई—क्यों ? तौ क्या फिर जे तुझे घर में न घुसने दें ?

रत्ना०—ऐसा तो कभी नहीं करेंगे। मैं तो जानू घर में घुसने देंगे, और तंग तो मुझे करें ही नहीं हैं।

भाई—तौ बस, चलो अब देर करना ठीक नहीं।

रत्ना०—इसमें बदनामी होगी, अड़ोसी पड़ोसी सब क्या कहेंगे ?

भाई—अड़ोसी पड़ोसी क्या नहीं जानै हैं कै इन्होंने कबसै तुझै

नहीं भेजा है ? मुझसे तो सभी पड़ोसी इनकी हठ की बुराई करें थे और कहें थे के वैसे न भेजैं तो तुम ज़बरजस्ती ले जाओ। पर लड़ने भिड़ने में धरा क्या है ? इसलिये चलो अब देर मत करो।

रत्ना०—उनको बड़ा दुख होगा।

भाई—कुछ दुखवुख नहीं होगा—बाँध ले पोटली।

रत्ना०—भैया, महादेवजी की राज़ी बिना सती अपने पिता के घर गई थी उसकी बात याद करके मुझे डर लगे है, मेरा माथा ठनके है।

भाई—तू चल, कुछ चिन्ता मत कर, वो बहुत दिनों की पुरानी बात है। हम देख लेंगे। कौड़ी कौड़ी माँगकै तो मामा ने व्याह कराया उस पै ऐसी ऐंठ! और क्या करैंगे, बहुत करैंगे आप ही दो चार दिन में तुझै लैनै चले आमेंगे। तब चली आइयो—चल।

रत्ना०—तो चलो, तुम जानो।

भाई—हाँ हाँ हम जानें। (जानेको तैयार होती है) और चाभी कहाँ रक्खैगी ?

रत्ना०—(ताला लगाकर वहीं एक जगह चाभी छिपाती हुई) यहाँ; यही जगह चाभी की है जो हमीं दोनों जाते हैं। (गये)

(तीन साधुओं का प्रवेश गाते हुए)

(गाना)

हँसाता है कभी मुझ को, कभी मुझ को रुलाता है,

हँसी मुझ से ही करने को तेरा जी चुलबुलाता है।
कभी बैठा के मुझ को बादशाहों में पुजाता है,
फटे हालों कभी दर दर पै मुझ को तू घुमाता है।
कभी चेतन बनाकर सैर दुनिया की दिखाता है,
बनाकर जड़ कभी मेरी दशा बेढब कराता है।
दिलाये जन्म अनगिनती, न अब भी बाज़ आता है,
भला, मिलता है तुझको क्या
जो मुझ को यों नचाता है?
यही कहना है बस तुझसे सताना बंद कर प्यारे,
कि ऐसी छेड़खानी में मज़ा क्या तुझको आता है॥

एक साधु—देखो सन्तजन, (मकान दिखाता हुआ) यही घर है उस हमारे गुरुभाई महात्मा का जो अब शीघ्र ही संसार के बन्धन से छूटकर भगवान के चरणों में मिल जानेवाले हैं। इस घर से माया अपने भाई अहंकार के साथ चली गई। अब इसमें रहनेवाला विवेकी पुरुष माया के मोह को छोड़कर माया-पति भगवान राम के चरणों की शरण लेगा।

दूसरा—अच्छा, तो इसी के लिये, तीनों काल का हाल जाननेवाले श्रीगुरु महाराज ने हम को भेजा है।

तीसरा—जिसमें

मनको मृग पहचान, तिया-प्रेम मृग-जल सदृश,
जग को झूठा जान, लगा राम के पद कमल—
जब यह तुलसीदास, घबड़ाया धाया हुआ,
जावे गुरु के पास, तज कर बंधन जगत का—
तब हम इसके साथ, रहें भेष बदले सदा,
दिये हाथ में हाथ, इसे बचाते मोह से—
किसी तरह के क्लेश, शारीरिक या मानसिक,
कर न सकें निःशेष, इसके सहज विराग को।

पहला—सो देख लो, हमें तो श्रीगुरु महाराज के चरण कमलों की आज्ञा पालन करनी है।

दूसरा—तुम दोनों भाई जाओ, आगे यात्रियों के भेष में जहां (कान में कुछ कहता है) वहां मुझे मिलना। तबतक मैं इसको लेकर आता हूं।

(गये)

(राजा लूटमालसिंह का अपने कुंवर और दो गुन्डों के साथ शिकारी वेष में प्रवेश)

राजा—(बन्दूक के सहारे खड़ा होता हुआ) ओहो, बहुत थक गये। (इधर उधर देखकर) अच्छी जगह है थोड़ी देर सुस्ता लो।

बुधुआ—कुँवर को प्यास लगी मालूम होती है; होठ सूख रहे हैं।

राजा—इतने थके मगर शिकार हाथ न आया।

सुधुआ—क्यों कुँवर साहब, यहीं न कहीं आप अपने लिये फूल-बाग़ बनवाने कहते थे।

कुँवर—हाँ, यहीं-(तुलसी० के मकान की तरफ) वही तो है, क्या कहें मिले तब न ? वह देता ही नहीं।

बुधुआ—अजी वह तो हँस हँसकर देगा।

राजा—क्या यही मकान है जो तुमको पसंद आया है और जिसे खुदवा कर तुम अपने लिये फूलबाग़ बनवाना चाहते हो ?

कुँवर—हाँ यही।

राजा—तो वह बैरागीवाला कैसे भी राज़ी नहीं होता ? वह कहता क्या है ?

कुँ०—यही कहता है कि मैं अपने बाप दादों का मकान कभी न दूंगा। मैंने कहा हम ज़बरदस्ती छीन लेंगे ; तो बोला 'मैंने पहले ही इस बारे में एक अर्ज़ी आगरे भेज दी है कि मेरा मकान ज़बरदस्ती छीना जा रहा है।'

राजा—(क्रोध से) हैं ! मेरे खिलाफ़ अर्ज़ी ! (सुधुआ बुधुआ की तरफ़ देखता है) अच्छा अच्छा, देखूंगा। और वह कविता—

कुँ०—हाँ, यों कहकर उसने वह कविता सुनाई जिसके बारे में मैं पहले ही कह चुका हूं।

राजा—अरे टुकड़खोर भिखमंगे ! तेरी यह हिम्मत ! हमारे खिलाफ़ झूठी अर्ज़ी ! हमारे ? और हमारे ऊपर वाहियात कविता ! हमारे !! बिना सोचे समझे चाहे जिससे

लड़ता झगड़ता है और ज़रा कुछ कहो तो अकड़ता है! देखो बुधुआ और सुधुआ, अगर तुमने मेरा नमक खाया है तो यह कांटा मेरे दिल में से निकालो; चाहे ज़हर से और चाहे तलवार से, तुम अपना काम आज ही संभालो—इसे मार डालो। ऐसी अच्छी जगह, जमना जी के किनारे, भला यह इसके लायक है कि हमारे? बस छीन लो ज़बरदस्ती; मिटा दो इस वैरागी की हस्ती।

गुन्डे—हुजूर, हम आपके पुराने नमक ख्वार हैं, और भला आपकी खातिर एक मच्छड़ पर तलवार चलाने में हमको कब इन्कार है? कहिये तो अभी आपके सामने लाकर गर्दन मरोड़ दें, सिर तोड़ दें, या गाली गलौज व कविता करने की सज़ा उसको यों दें कि उसकी ज़ुबान काटकर छोड़ दें।

कुँ०—अजी या तो वह यहाँ से हमेशा के लिये काला मुंह कर जाय और या मर जाय—जिसमें यह जगह मुझे मिल जाय सो काम करो।

राजा—हम राजा हैं और परमेश्वर के अंश हैं; चाहे जिसका धन और धरती तो क्या, चाहे जिसकी स्त्री तक छीन लेने का हमको पूरा अख्त्यार है। जो चीज़ हमको पसंद आजाय वही हमारी है। बस, अपने राज के मालिक हैं तो हम हैं, ईश्वर हैं तो हम हैं, रक्षक हैं तो

हम हैं, भक्षक हैं तो हम हैं। वह वैरागी का लौंडा इतनी मोटी बात भी नहीं समझता और हमारा मुक़ाबला करना चाहता है!

बुधुआ—यह उसकी नादानी है।

राजा—कहाँ हम ईश्वर के अंश और कहाँ वह भिखारी का बंश! और, कोई यह एक ही शिकायत नहीं, गाँव भर, आये दिन, उसकी शिकायत करता है। मैंने दस साहूकारों के घर लूट लिये या दस ग़रीबों के घर छीन लिये तो क्या हुआ? मैं राजा हूं, मुझे अख़्त्यार है—जो चाहूं सो करूँ। क्यों है न? और कम्बख़्त ने मेरे खिलाफ़ बादशाह के यहाँ अर्ज़ी भेजी है! इसकी ढीठता को तो कोई देखे! यह सब बामनपन की ऐंठ है, और कुछ नहीं। बस, आज से तुम लोग एक एक बामन को तंग करना शुरू करो जिससे हमारे राज में एक भी दुश्मन न रहने पाय और राज भर की सारी बादी छट जाय। हमारी गोलमालकारिणी पाठशाला में कोई बामन न पढ़ने पाय और न पढ़ाने पाय, और इन लोगों को जो सदाबर्त बाँटा जाता है सो बन्द किया जाय। बस अब मुझे कुछ न कहना पड़े। मैं बामनों को अपने से ऊंचा और पूज्य नहीं समझता—बस।

(गया)

कुं०—देखो सुधुआ-बुधुआ, मैं तुम्हें पाँच रुपये अपने पास से

दूंगा, इस कम्बख़्त तुलसी को आज ही बाँध कर जमना में फेंक दो।

गुन्डे—भला कहीं आज यह बच सकता है?

कुं०—यह दद्दू की मूँछ को सूअर की पूँछ और दाढ़ी को झाड़ी बताता है।

गुन्डे—अपने आप अपनी मौत बुलाता है।

कुं०—नाक को गाजर और कानों को कमरख की उपमा देता है।

गुन्डे—बेफायदे आफ़त मोल लेता है।

कुं०—हाथों को डन्डे और पैरों को कंडे!

गुन्डे—क्या कहा?

कुं०—पेट को नगाड़ा और पीठ को सिलीपट!

गुन्डे—आदमी है या दीवट?

कुं०—बस मैंने कह दिया कि अब यह न बचने पावे।

गुन्डे—अजी आज यहां है तो कल परलोक में ही नज़र आवे।

कुं०—बस, तो आज रात—और नहीं तो मेरा आत्म-घात।

बुधुआ—नहीं महाराज, ऐसा क्यों हो—

सुधुआ—करेंगे आज ही तनसे

जुदा सर उस भिखारी का,

भला वह क्या बचेगा

हाथ खाकर इस शिकारी का?

(गये)

(कूदना और परली पार की ओर तैरते हुए जाना)

(छिपे हुए बाबाजी का आकर गाना)

देखियो फिसल न जावे पैर,
जो न सधा चञ्चल तरङ्ग में तो न समझियो खैर।
विषय वासना के सागर को सका न कोई तैर,
मगर मच्छ मुँह फाड़े बैठे जिनसे तेरा वैर।
क्यों गैरों को अपना समझा, क्यों अपनों को गैर,
चेत चेत रे आत्म-ज्ञान में, कर दुनिया की सैर।

(सीन बदलना—ससुराल के मकान का दरवाज़ा)

तुलसी०—(कपड़े निचोड़ते हुए बार बार दरवाज़े और दीवारों की ओर देखते हैं ; आप ही आप) हुं:, किस बेवक़ूफ़ को गाने की सूझी है ! अच्छा अब किधर से और कैसे ? (चारों ओर देखकर और मकान के इस सिरे से उस सिरे तक दो एक बार घूम कर) यही ठीक होगा। रात में छत पर चढ़ना ठीक नहीं ; पहले दरवाज़ा खटखटाऊँ, अगर कोई न सुने और न कोई बाहर आवे तो फिर उस टूटे छप्पर पर चढ़कर ऊपर जाऊँ। (थोड़ी थोड़ी देर बाद तीन बार दरवाज़ा खटखटाना, हाथमें दीया लिये स्त्री का आना और देखकर अचरज करना, तुलसीदास का स्त्री को देखकर ख़ुशी से उसे पकड़ने की कोशिश करना, गड़बड़ में बत्ती का बुझ जाना)

नई रहती है प्रभु की प्रीति ही—

यह वेद-बानी है।

(तुलसी० एकदम चौंककर और चारों ओर देखकर विचार में लीन हो जाते हैं, स्त्री यह समझकर कि मैंने इनके दिल को दुखा दिया कहती है) मेरे मुँह से न जाने क्या निकल गया ; पर वह मैंने तुम्हारा दिल दुखाने के लिये नहीं कहा। हे नाथ, दुखी मत हो, क्षमा करो, मैं आठ दिन में—(कुछ जवाब न मिलने पर) अच्छा चार दिनमें—(फिर कुछ जवाब न मिलने पर, इसमें उनकी नाराज़ी समझकर) अच्छा दो दिन में चलूँगी। (थोड़ी देर तक कुछ जवाब न पाकर, उनका कंधा पकड़ कर) देखो, ऐसे क्यों नाराज़ होगये ? अच्छा तुम्हारी सौगन्ध कल सबेरे ही चली चलूँगी। अभी तो कुछ खा पीकर आराम करलो, कल सबेरे ही चलेंगे (उनके दोनों हाथ पकड़ कर) क्यों ?

तुलसी०—(यकायक चौंककर और हाथ छुड़ाकर ऊपर देखते हुए)

'जो होता राम से यह प्रेम

तो फिर क्या नहीं होता ?

न खाते मोह के अन्धे

कुए में गिर के यों गोता।'

क्या कहा ? 'कि होती सुन्दरी की प्रीति

दिनपर दिन पुरानी है,

नई रहती है प्रभु की प्रीति ही—
यह वेद-बानी है।'

(हाथ जोड़ कर स्त्री के पैरों पर गिरते हुए) हे माता, तुझे धन्य है, तेरे चरण छूकर (स्त्री का अचरज करना) आज मैं पवित्र हुआ और धन्य हुआ। (यकायक चल देना, और किंकर्तव्य विमूढ़ होकर स्त्री का बेहोश होना और गिर जाना, धड़ाका सुनकर घर के लोगों का बाहर आना और रत्नावली को बेहोश देखकर घबड़ाना, बड़ी बड़ी तरकीबें करने के बाद उसका ज़रा हिलना, सब का उस का नाम लेकर पुकारना)

माता—बेटी ! क्या हुआ ?

रत्ना०—(धीरे से) जागना और सोना—सोना और जागना (बेहोश होगई, सब का कोशिश करना, उसका फिर ज़रा हिलना ; हाथों के सहारे खड़ा किया जाना)

कुनबेवाले—क्या बात थी ? आखिर बता तो।

रत्ना०—(धीरे से) आना और जाना।

कुनबे०—ऐं ? क्या हुआ था ?

रत्ना०—मिलना और बिछुड़ना।

कुनबे०—क्या कोई चोर बदमाश था ? कौन था ?

रत्ना०—साहूकार। (बेहोश होजाना ; सब का अचरज से एक दूसरे की तरफ़ देखना)

(परदा गिरता है)

सीन ४

जंगली रास्ता

(तुलसीदास का गाते हुए आना)

(गाना)

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक
धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत,
बारक बिबस नाम टेरे ॥
जेहि कर कमल कठोर संभु-धनु
भंजि जनक संसय मेट्यौ ।
जेहि कर कमल उठाय बंधु ज्यौं
परम प्रीति केवट भेट्यौ ॥
जेहि कर कमल कृपालु गीध कहँ
पिंड देइ निज धाम दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दास हित
कपि कुल पति सुग्रीव कियो ॥
आयौ सरन सभीत विभीषन
जेहि कर कमल तिलक कीन्हों ।

जेहि कर गहि सर चाप असुर हति
अभय दान देवन दीन्हों ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि तरु की
मेटति पाप ताप माया ।
निसि बासर तेहि कर सरोज की
चाहत तुलसिदास छाया ॥

अब किस का घर और किस का द्वार ? हहहहहह, सुपने में क्या देखता हूँ कि शिवजी महाराज ने मुझे दर्शन दिये हैं और कहा है कि बेटा, 'राम' मंत्र जपा कर। क्यों न हो, मेरे भाग्य अब खुले हैं। मैं क्यों न अब शंकर भोलानाथ के उपदेश के अनुसार श्रीभगवान रामचन्द्रजी के चरण कमलों में मन लगाऊँ ! अहा, चारों तरफ़ उजाला ही उजाला है। (आनन्द में मगन होकर नाचते हैं)

(तीन वैरागियों का यात्रियों के वेष में आना)

१ यात्री—क्यों देवता, इस तरह क्यों करते हो ? क्या तुमको कुछ क्लेश है ?

तुलसी०—क्लेश ! क्लेश ! इस नाम की चीज़ कलरात तक बाज़ार में बिकती थी, अब उसका बिकना बन्द होगया है।

२ यात्री—तो क्या इस प्रसन्नता का कोई विशेष कारण है ?

तुलसी०—(उसी ढंग से नाचते हुए) गुरु-दरशन की आशा साधो, गुरु-दरशन की आशा साधो !

३ यात्री—तुम्हारे दिमाग़ में क्या कुछ ख़राबी आगई है ?

तुलसी०—हाँ, आकर निकल गई है।

१ यात्री—आख़िर तुम कहाँ यहाँ जङ्गल में फिर रहे हो ? क्या कहीं तीर्थाटन को जा रहे हो ?

तुलसी—हाँ—योंही समझिये।

२ यात्री—कौन से तीर्थ ?

तुलसी०—जिसके चरण-कमल की सेवा में सब तीर्थ सदा उपस्थित रहते हैं।

३ यात्री—यानी ?

तुलसी०—सद्‌गुरु ।

१ यात्री—कहाँ ? इस समय कहाँ जा रहे हो ?

तुलसी०—आपे से बाहर।

२ यात्री—तुमको क्या सूझी है ? मज़े में संसार में रहकर तरह तरह के भोग उड़ाओ। साधु-फ़क़ीर बनने में क्या लाभ है ? न कोई भीख देता है और न अब वैसी किसी को श्रद्धा ही है। देखो—

कलि के प्रकोप से हैं सूख गये कंद मूल,
देते नहीं तरु अब फल सुखदाई हैं ;
श्रद्धा के अभाव से अनाज हुआ तेज ख़ूब,
लाख लाख गौएँ बिना चारे के नसाई हैं ;
आय होगई है कम खर्च की न पूछो बात,

तरह तरह की बीमारियाँ जो छाई हैं ;
होती नहीं ऐसे में गृहस्थों की गुज़र भला,
बाबाजी को कहां धरी पूरियाँ-मिठाई हैं ।

३ यात्री—सोहना स्वरूप है प्रफुल्ल है मुखारविन्द,
खेल रही ख़ूब नये यौवन की है कली ;
सोचले विचारले सँभाल काम दुनिया के,
भूली मति भौंरी तेरी किधर को है चली ;
दे रहे हैं हाथ पैर काम मनमाना ख़ूब,
मौज करो महलों में छोड़ दो वनस्थली ।
शोभा नहीं देती है फ़क़ीरी पुरुषार्थी को,
जैसे नहीं बालक की वृद्धा पत्नी भली ।

१ यात्री—अलख जगाओगे न भिक्षा कुछ पाओगे,
तो ख़ूब पछताओगे बिलख रह जाओगे ;
चिन्ता पेट की से सदा भागता विराग दूर,
योग-साधना की बुद्धि सब बिसराओगे ;
दोनो पथ भ्रष्ट हुए मारे ही फिरोगे जब,
पर धन पर तब नीयत डिगाओगे ;
स्वार्थ खो चुके हो, परमार्थ भी मिलेगा नहीं,

श्वान-वृत्ति कर एक दिन मर जाओगे ।

२ यात्री—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर हैं शत्रु तीखे,
तरह तरह तुम्हें नाच ये नचावेंगे ;
अहंकार अमर पिता है इन पाँचों ही का,
मर कर बार बार जन्म धर आवेंगे ;
बड़ा ही कठिन पंथ साधो योग-साधन है,
चलते थकोगे सब होश उड़ जावेंगे ;
डिग गये जिससे सुमुनि विश्वामित्र जैसे,
तुमसे अबुध भला पार कहाँ पावेंगे ?

तुलसी०—अरे बाबा,

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे
जप जोग विराग लै जीव परानै ;
को करि सोच मरै तुलसी
हम जानकिनाथ के हाथ बिकानै ।

(नेपथ्य में—'यही है, यही है, देखो बदमाश जाने न पावे, पकड़लो'—वगैरह । सब यात्रियों का अचरज के साथ इधर उधर देखना । प्रवेश गुन्डों का)

गुन्डे—यही है । राम बोला तुलसीदास ?

तुलसी०—उससे काम ?

गुन्डा—विन्ध्य के महाराज का वारंट है उसके नाम।

तुलसी०—तुम्हारा मतलब ?

गुन्डे—उसका सिर ले जाकर हाज़िर करना।

तुलसी०—कुसूर ?

१ गुन्डा—राजा साहब की सच्ची शिकायतें लिखकर बादशाह के पास आगरे भेजने की कोशिश करना।

१ यात्री—ख़ूब! क्या राजा की सच्ची शिकायतें करना भी पाप है ?

२ गुन्डा—राजा साहब की नाक को गाजर मूली और पेट को नगाड़ा वग़ैरह बतलाना।

२ यात्री—धन्य धन्य।

१ गुन्डा—सबसे लड़ना झगड़ना और रैयत के अमन में ख़लल-अन्दाज़ी करना।

तुलसी०—मैं ही हूँ वह तुलसीदास, कहो क्या चाहते हो ?

गुन्डा—तुम्हारा सिर। लो अब सँभल जाओ।

तुलसी०—अरे,

वही सँभलेगा जो अबतक पड़ा ग़फ़लतमें सोता है,
नहीं उसको सँभलना है जो बैठा मुँहको धोता है।
सँभलजाओ सँभलजाओ य' क्या धमकी दिखाते हो,
(नीची गरदन करता हुआ)
लो हाज़िर है य' सर अब क्यों वृथा देरी लगाते हो।

करो तुम काम इस जड़ देह से सर को जुदा करके,
चरण-कमलों में मुझको जल्द ही पहुँचाओ रघुवर के

(गुन्डों का तलवार उठाना और उसी वक्त कड़कड़ाहट के साथ रामकवच का तुलसीदास के चारों तरफ प्रकट हो जाना ; गुन्डों का जकड़ जाना और घबड़ाना। उनकी दशा देखकर सब का अचरज करना)

१ यात्री—अरे मूर्खो, इस कभी न बुझनेवाली पेट की आग को बुझाने के लिये बुरे से बुरा काम करनेवालो,

नहीं है यह रँगा गीदड़ इसे साधू असल जानो,
सज़ा तुमने जो पाई है उसी के ढंग से पहचानो ;
हैं सच्चे साधु समदर्शी जो उनको दुःख देता है,
तो उनका कुछ नहीं जाता ख़ुद आफ़त मोल लेता है।
जो मारो गेंद तुम दीवार में तो लौट आवेगी,
बुरी करनी तुम्हारी लौटकर तुमको सतावेगी।

१ गुन्डा—(यात्रियों से) महाराज, छिमा, छिमा।

२ गुन्डा—जीवन दान दीजिये ; महाराज हमारा बदन टूटा।

यात्री—जिसको तुमने सताया हो उसी से क्षमा माँगो।

गुन्डे—आप ही हमारी तरफ़ से कह दीजिये।

तुलसी०—(आप ही आप) कौन क्षमा करेगा ? किसने इनको बाँधा है ?

यात्री—(तुलसी से) हे भक्तराज, क्षमा कीजिये, इन नादान पापियों को।

तुलसी०—मैंने तो बाँधा नहीं, करूँ कहें जो आप,
इनकी ऐसी दशा लख, होता है संताप।

१ गुन्डा—(रोकर) महाराज, मरे हम तो, सारा बदन टूटा जाता है।

२ गुन्डा—जोड़ जोड़ उखड़ा जाता है।

यात्री—(तुलसी से)

इष्ट देव को सुमिर कर करो दया का दान,
या फिर जाती है अभी छिन में इनकी जान।
रक्षित हुआ शरीर, राम-कवच से आपका,
अब तो हे मतिधीर, शत्रु-रहित तुम होगये।

(तुलसीदास का हाथ जोड़ना और रामचन्द्रजी का ध्यान करना, कवच का अंतरध्यान होना ; तुलसी० राम नाम लेकर उनके हाथ सीधे करते हैं ; गुन्डे तुलसीदास के पैरों पर गिरकर लोटते हैं)

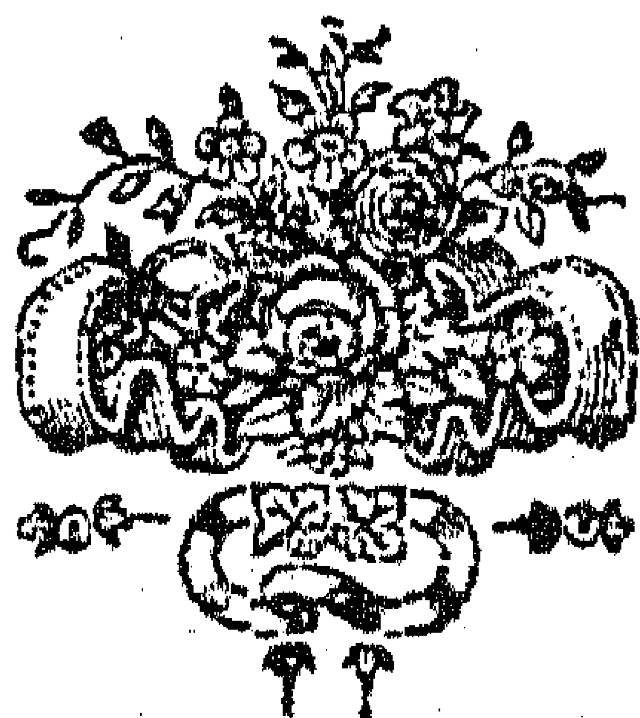
गुन्डे—आज हमारा जीना सुफल हुआ, हमारे चौरासी लाख जन्मों की पाप-वासना दूर हुई। हमको अपनी सेवा में रखकर रघुनाथजी के चरण-कमलों में लगाइये। महाराज, अब तो हमें भी अपने साथ ही रखिये। अब हम आप का संग न छोड़ेंगे। (पैरों पर गिरते हैं)

तुलसी०—श्रीरामचन्द्रजी महाराज के चरण-कमलों में अगर तुमको सच्चा अनुराग हुआ है तो तुम धन्य हो। मैं तो इस समय किसी ख़ास काम से सोरों जा

रहा हूँ ; तब तक तुम अवध में जाकर भजन करो, मैं तुमसे वहीं आ मिलूंगा। तुम धन्य हो। तुम बड़े साधु हो। (यात्रियों के साथ तुलसीदास का जाना, उन दोनों का गाना)

(गाना)

जागे हमारे भाग।
भागे तीनों ही ताप आज प्यारा सत्संग मिला,
जागे हमारे भाग।
जनम जनम के पातक छूटे,
रागद्वेष के बंधन टूटे,
बुझी कपट की आग, हाँ हाँ बुझी०
भागे तीनों ही ताप० ।१।
चलो चलो अब ख़ुशी मनाओ,
निसि दिन प्रभु से ध्यान लगाओ,
छेड़ प्रेम का राग। हाँ हाँ छेड़ प्रेम०
भागे तीनों ही०



सीन ५

(सोरों में एक रास्ता, गुरु नरहरि दास और चार आदमी)

गुरु—तो समझे, मेरे यहाँ पाखण्डियों को शिष्य बनाकर संसार का अपकार करने का कारबार नहीं होता, मेरे यहाँ तो सच्चे ज्ञान का व्यापार है। जो श्रद्धारूपी मूल्य देता है उसी को सद्ज्ञान मिलता है, और किसी को नहीं। शिष्य बनानेवाले यहाँ बहुत से तिलकधारी और मठधारी मौजूद हैं। तुम वहीं कहीं जाकर दीक्षा लेलो। यहाँ तो यह काम नहीं होता। (एक से) अच्छा, भला बतलाओ तो तुम्हे संसार से वैराग्य क्यों हुआ ? सच्चा हाल सुनाना।

एक—महाराज, असल बात तो यह है कि मेरा दिवाला निकल गया है। अब मैं कैसे कहीं मुँह दिखलाऊँ ; इसलिये मैंने यही निश्चय किया है कि आपके द्वारपर पड़ा पड़ा टुकड़े खाऊँ और रामचन्द्रजी के चरण कमलों में अपना जीवन बिताऊँ।

गुरु—ठीक है। (दूसरे से) भला तुम तो कहो तुम्हें क्या सूझी है ?

दूसरा—महाराज, डकैती के मामले में मुझे तीन बार जेलखाना हो चुका है, कोड़े भी पड़ चुके हैं। अब जेलखाने जाने, या कोड़े खाने की तबीयत बिलकुल नहीं होती है

महाराज, अब तो कोई ऐसी जुगत लगे कि बिना हाथ पैर हिलाये ही बस खाने भर को मिले।

गुरु—सच है, (तीसरे से) अच्छा अब तुम कहो।

तीसरा—मैंने एक रंडी के पीछे अपनी स्त्री का ख़ून कर दिया; इसपर मेरे भाइयों ने मुझे मारकर निकाल दिया है। अब जो आप की आज्ञा हो करूँ।

गुरु—बहुत ठीक, (चौथे से) क्यों भाई, तुमपर क्या बीती?

चौथा—मैं अन्धेरनगरी के राजा चापड़तल्लामसिंह के यहाँ नौकर था। वहाँ से माल मारकर भागा हूँ। कहीं रखने को जगह नहीं दीखती। अगर आप रखलें और मुझे अपना शिष्य करलें तो बड़ी कृपा हो।

गुरु—हाँ बच्चा, ठीक है, अच्छा तो—

(प्रवेश तुलसीदास का तीनों यात्रियों के साथ; सब का आकर एकदम गुरु के पैरों में गिर पड़ना; गुरु का उठाना)

तुलसी०—(हाथ जोड़कर)

बंदौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

गुरु—चलो तुलसीदास, तुम ख़ूब आये, हम तुम्हारी याद ही कर रहे थे (तुलसीदास और यात्रियों के साथ जाते हुए उन चार मनुष्यों से) भाई, जैसी तुम्हारी श्रद्धा हो वैसा ही करो। शिष्य तो मैं हर किसी को बनाता नहीं, हाँ कथा सुननी हो तो चले आया करो। सब की गुरु रामकथा ही है,

आगे जो तुम्हारी समझ में आवे सो करो। (गये)

पहला—देखा, बाबाजी है चालाक, तीन चार मुसाफ़िरों को फँसा कर ले गया।

दूसरा—हम लोगों के चकमें में नहीं आया। अगर आजाता तो दिलद्दर दूर हो जाते!

तीसरा—अजी इसके पास सचमुच बड़ा माल है।

चौथा—तो चलो अब किसी और को टटोलें। (एक तरफ़ देखकर) यह साधू आ रहा है; इससे कुछ भेद पूछें। (साधु का प्रवेश; इकतारा और खड़ताल पर गाता है)

(गाना)

भ्रम में भूले रहे कहाँ तुम,
जो गुरुजी की शरण न आये,
भ्रम में भूले रहे कहाँ तुम।
सूखे टुकड़े माँग चबाये,
अच्छे भोजन कभी न पाये,
दुर्लभ औसर वृथा गँवाये,
मद में फूले रहे कहाँ तुम। भ्रम में०

(आदमियों से) क्यों बाबा किस फ़िक्र में हो, रामजी।

एक—क्या कहें रामजी, इस इतने बड़े तीर्थ में हमको कोई भी बाबाजी चेला नहीं करता। क्या कलियुग की माया है!

बाबा—कौन तुम्हें चेला नहीं करता ? कहीं किसी प्रपंची-ग़रीब गुन्डे के जाल में न फँस जाना। चेला होना हो तो गुरु लम्पटानन्दजी के गुरुद्वारे में सीधे चले जाना। वही हमारे भी गुरु हैं।

दूसरा—भला उन गुरु महाराज की कुछ तारीफ़ तो कीजिये।

तीसरा—जिसमें उनपर हमारी श्रद्धा जमे।

चौथा—ऐसा उनमें क्या चमत्कार है ?

बाबा—चमत्कार ! उनका चमत्कार ? सुनिये—

चेले बीस हज़ार, हाथी घोड़े ऊँट रथ ;
धन भण्डार अपार, जिसे न कोई गिन सके।
बहुत बड़ा दरबार, ठाठ निराला ही अहा ;
वेश्या एक हज़ार, रहतीं सेवा में सदा।
रोज़ ख़ूब पकवान, उड़ते मोहन-भोग हैं ;
नशा तँबाकू पान, कमी वहाँ किस बात की ?
हैं राजा महराज, उनके चेले बहुत से ;
सधते रहते काज, जिनसे गुरु महाराज के।
(मुसकराकर) गुरुआनी का हाल, कहूँ भला क्या आपसे,
बेढब है वह जाल, फँसे फ़कीर गृहस्थ सब।

एक—वाह !

दूसरा—वाह !

तीसरा—वाह !

चौथा—वाह !

एक—तब तो हमें वहीं ले चलिये और शिष्य करा दीजिये।

दूसरा—हम संसार सागर में डूबे जाते हैं—

तीसरा—हमें शीघ्र बचाइये।

चौथा—चलिये महाराज, जल्दी चलिये। (गये)

(प्रवेश तुलसीदास का गाते हुए)

(गाना)

तू दयाल दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो,
मो समान आरत नहिं आरत हर तोसो।
ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरौ,
तात मात गुरु सखा तू सब विध हितु मेरौ।
मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै,
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण-शरण पावै॥

अहा, धन्य है गुरु महराज को। जो लोग गुरु में और ईश्वर में भेद मानते हैं वे बड़े मूर्ख हैं। नर ही नारायण है, और नारायण ही गुरु है; फिर भेद कैसा ? (दो आदमियों का आकर चिट्ठी देना, गुसाँईजी का कुछ मुसकराना और कहना) रत्नावली की चिट्ठी

है। अब किसकी रत्नावली? देवी, तुझे धन्य है, (चिट्ठी को देखते हुए) क्या कहती है—

'इस कली को है तज गया मधुकर,
सूझा होगा उसे यही बेहतर;
पर कहीं और गंध पर मरकर,
फँस न जावे यही लगा है डर।'

(हँसकर) वाह, अरी भोली, ऐसा सन्देह क्यों करती है? जिस दिन तूने मेरी आँखें खोलीं उसी दिन से, तू तो क्या, सारे संसार की स्त्रियाँ मेरी माता होलीं। (आदमी से) जाओ कह देना कि—

है उसी जाल में फँसा भौंरा,
जिसमें फँसने से छूटता है जाल।
हूँ मैं अब राम के चरनों में पड़ा,
तेरे उपदेश का रहता है ख़याल।
प्रेम-रस तेरी बदौलत चक्खा,
कर दिया तूने मुझको ख़ूब निहाल।

(आदमी से) कहो यहाँ कैसे आये थे?

आदमी—महाराज, तीर्थयात्रा कों आये रहे, काल चले जै हैं।

तुलसी—मैंने जो कहा वह तुम्हें याद रहेगा? अच्छा तो चलो तुम्हें लिखकर ही जवाब दे दूँ। (जाना; उन दोनों का भी अचरज से एक दूसरे की तरफ़ देखते हुए पीछे पीछे जाना)

सीन ६

(विंध्य के राजा का कमरा)

राजा लूटमाल सिंह और रानी।

राजा—तो जो असली हालत है वह क्या तुमसे छिपी हुई है ?

रानी—मैं यह सब नहीं जानती ; मेरे खर्च का इन्तज़ाम कहीं न कहीं से होना चाहिये।

राजा—कहीं न कहीं से ?

रानी—हाँ, कहीं न कहीं से। आज तीन महीने से मुझे खर्च नहीं मिला। इधर नौकर-नौकरानियों का बुरा हाल है। भला अभी ये सब लोग भाग गये तो क्या घर को मैं झाड़ूँ बुहारूँगी ?

राजा—अजी ऐसा ही है तो मैं झाड़-बुहार दिया करूँगा।

रानी—मुझे बेमौके दिल्लगी अच्छी नहीं लगती।

राजा—अच्छी तो मुझे भी नहीं लगती मगर क्या करूँ ; लाचारी है। वो कम्बख़्त सुघुआ बुघुआ उस बैरागी को मारने गये सो वहीं रह गये। होते तो उन्हीं कम्बख़्तों को भेजकर किसी महाजन का घर लुटवा लेता, या कहीं आस पास डाका डलवा देता, और तबतक उसी से खर्च चलाता। क्योंकि अपना तो—

रानी—धूल पड़े ऐसे धन पर।

राजा—क्योंकि अपना तो यह काम ही है कि शत्रुओं को जीत

कर उनका धन लूट लेना। और तुम जो धूल डालती हो सो भला बताओ तो कि इसमें हर्ज ही क्या था कि झुधुआ बुधुआ बड़ी धूमधाम से किसी सेठ साहूकार महाजन पर विजय प्राप्त करके धन लाते और उसमें से कुछ मुझे भी भेंट में देते ? सच पूछो तो अपना तो यही धर्म है।

रानी—बड़ा अच्छा धर्म है! एक बेक़ुसूर बामन के बेटे का ख़ून कराना और भले आदमियों का धन ज़बरदस्ती लूट लेना !

राजा—तो क्या इसमें कुछ बुराई है ?

रानी—नहीं तो, इसमें तो बड़ी भलाई है। राजा कहाकर रैयत को लूटना !

राजा—क्षत्री लोग हमेशा से ही लूट मारकर अपने अपने स्वराज क़ायम करते चले आये हैं; इसमें अचरज की कौनसी बात है। यह रियासत भी तो हमें फोकट में ही मिली है। बादशाह की कृपा थी; उसने पहले राजा को गद्दी से उतार दिया और हमको राजा बना दिया। अब अगर हम प्रजा का पालन ठीक तरह से करते रहे तो कोई भी हमारी तरफ़ उँगली नहीं उठा सकता। उधर सुना है कि बादशाह सलामत ने पठानों से लड़ाई छेड़दी है। ऐसे में कुछ धन हाथ लग जाता तो बड़ा काम चलता।

रानी—(रूठकर गुस्से से) मुझे बेच दो। मैं यह सब नहीं सुन सकती—

राजा—ऐसी नाराज़ क्यों होती हो, देखो—

(गाना)

राजा—अरे धड़के है मेरी छतिया—

रानी—जाओ जाओ न हमसे बनाओ बतिया—

राजा—तुम बातों ही बातों में रूठो हो यों,
लजवन्ती छुए से लजाती है ज्यों—

रानी—हटो जी न रार करो—

राजा—(रानीकी आँखों की तरफ़ देखकर) तेज़ न तलवार करो हाँ;

रानी—जाओ जाओ०......

(गयी)

राजा—(आप ही आप)—क्या कहूँ, सच बात तो यह है कि हाल पतला है, जैसे तैसे अपने छलीपन की धाक जमा रक्खी है वरना सच पूछो तो ढोल में पोल के सिवा और कुछ नहीं। (एक ओर देखकर) यह कौन आ रहा है? ऐं! मंत्री माल-मारूमलजी। आइये मंत्रीजी, आजाइये, यहाँ कोई है थोड़ा ही; चले आइये। (मन्त्रीजी प्रणाम करते हुए आये) मालूम होता है कि शऊर सिखाने के बहाने शहंशाह ने पठानों की आज़ादी को हड़प कर लेने का पूरा इरादा कर लिया है। क्यों, क्या राय है आपकी? क्या और कोई ख़बर आई?

मंत्री—अन्नदाताजी, अभी हाल जो ख़बर आई है उससे तो यही साबित होता है।

राजा—देखो, आगरे से मुझे कितने बुलावे आ चुके हैं; ख़ज़ाने में भी तीन लाख रुपया अदा करना है। अभीतक तो बीमारी का बहाना करके टालता रहा हूँ लेकिन मालूम होता है कि मामला अब ज्यादा न टल सकेगा।

मंत्री—हाँ अन्नदाताजी, अगर लड़ाई छिड़ गई तब तो मुश्किल ही होगी।

राजा—ख़ैर, वैद्य काल भाई हलाहलजी त्रिवेदी से लिखा देंगे कि हमको वात-पित्त-कफन नामका रोग हो गया है। वैद्यजी बड़े होशियार हैं।

मंत्री—अन्नदाताजी, बड़े होशियार, आयुर्वेद-ज्ञान-मार्तण्ड हैं।

राजा—वह रोग? वह रोग बड़ा भयानक होता है।

मंत्री—अन्नदाताजी, बेशक होता है।

राजा—और मुझको वाक़ई हो गया है—उसके लक्षण दीखने लगे हैं।

मंत्री—भगवान कुशल करे।

राजा—पहले भी कई बार हो चुका है।

मंत्री—बेशक, अन्नदाताजी।

राजा—अच्छा ज़रा वैद्यजी को तो बुलवाइये।

मंत्री—अन्नदाताजी, मैं अभी कहता आया था। (एक तरफ़ देखकर) मालूम होता है वे आप ही चले आ रहे हैं, (गौर से देखकर)

हाँ वही हैं। देखा आपने? लीजिये, आही गये।

राजा—मालूम होता है कि यह इस रोग का ख़ास लक्षण है कि याद करते ही वैद्य आजाय। क्योंकि मरने जीने का सवाल है न?

-(वैद्यजी का आना और आशीर्वाद देकर बैठना)

राजा—तो वैद्यजी मुझे ऐसा रोग है।

वैद्य—कैसा?

राजा—बड़ा भयानक। आप ही बताइये।

वैद्य—(अँगूठे के नीचे हाथ पकड़कर) यहाँ तो कुछ है नहीं। (डंड के पास उँगली रखकर) हाँ, यहाँ तो कुछ दीखता है दाल में काला।

मंत्री—काला? अजी बिलकुल सियाह है भीतर से।

राजा—और इधर मैं देखता हूँ कि मुझे कहीं लड़ाई पर न जाना पड़े। क्यों वैद्यजी, ऐसा कौनसा रोग है जो अगर मुझे हो जाय तो मुझ से लड़ाई की मशक्कत न झिले? बस वही रोग मुझ को हो गया मालूम होता है।

वैद्य—ऐसे कई रोग हैं।

राजा—जैसे?

वैद्य—जैसे हाथ पैरों का टूट कर बेकाम होजाना, प्राण वायु का शरीर से निकलकर कहीं अन्यत्र प्रवेश कर जाना—

राजा—और? और?

वैद्य—(सोचकर) कहाँ न जाना पड़े?

राजा—लड़ाई में।

वैद्य—(सोच कर) हूँ; ऐसा एक रोग विशेष है।

मंत्री—कौन सा? कौन सा?

वैद्य—रोग रण-छोड़-सिंही, या जिसको प्रचलित भाषा में "पलायन" कहते हैं।

मंत्री—(वैद्य से) 'पलायन'! ऐं! 'पलायन'! महाराज वैद्यजी, यह रोग है, या रोग उतारने का मंत्र? या बकायन का भाई? या डायन का जमाई? यह है क्या? हुँः 'पलायन'!

वैद्य—यह लड़ाई से बचने का ख़ास रोग है। इस का पता पहले पहल जिवराखनपुर के ठाकुर रणछोड़सिंह जी ने लगाया था, इसी लिये इसका वह भी नाम है।

राजा—इसके लक्षण?

वैद्य—जिस को यह रोग होता है वह शत्रुओं की ओर पीठ करके बेतरह पैर चलाने लगता है, क्योंकि आपे में नहीं रहता। इस लिये, जिसे ऐसा रोग हो उसके लड़ाई में जाने से कोई लाभ नहीं, बल्कि हानि ही है, क्योंकि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, और यह रोग उड़कर लगता है। मतलब यह है कि एक को देख कर दूसरे भी इसी तरह हाथ पैर चलाने लगते हैं, और नतीजा यह होता है कि थोड़ी देर में एक तरफ़ का मैदान ख़ाली दिखाई देने लगता है।

राजा—(मंत्री से) अगर कहीं बादशाह को मालूम हो गया कि मुझे ऐसा भयानक रोग है तो वे मुझे कभी भी लड़ाई पर न भेजेंगे।

मंत्री—(हाथ जोड़कर) घणी खमा, अन्नदाताजी, हाँ।

राजा—क्या कहूँ, इससे लगता तो क्षत्री-पन में बट्टा है पर असल में मुझे यही रोग है।

वैद्य—हो सकता है, मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि कुछ दाल में काला है।

राजा—(मंत्री से) वह मौज़ा पैद्‌लपुर आज से वैद्यजी के नाम, इस नये रोग के इनाम में, लिख दिया जाय।

मंत्री—अन्नदाता, जो हुकुम।

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(हाथ जोड़कर) श्रीमहाराज साहब की सेवा में जहाँ-पनाह बादशाह सलामत के यहाँ से दूत हाज़िर हुआ है।

राजा—(रोब से मंत्री और वैद्य की तरफ़ देखकर चोबदारसे) हाज़िर करो (चोबदार गया) देखिये, मैं घर में ठहर न सकूँगा; मैं ठहरा पुराना रणबाँकुरा, भला लड़ाई में न जाऊँ! कहीं ऐसा हो सकता है? इस लिये मंत्रीजी, वह मौज़ा अभी वैद्य जी के नाम न लिखना। अगर मैं लड़ाई में काम आजाऊँ तो इनके नाम लिख देना, जिस से मेरे बाद इन बेचारों को तकलीफ़ न हो।

(प्रवेश दूत का; सलाम करता है)

राजा—(मूँछों पर ताव देकर और रोब के साथ सब की तरफ़ देखकर

दूत से) क्या है ? (फिर सब की तरफ़ देखता है)

वैद्य—(मंत्री के कान में) दिनमें कितने रंग पलटते हैं ?

मंत्री—(वैद्य के कान में) इलाज कीजिये अब बहादुरी की बू भर गई, ज़रा हट कर बैठिये, कहीं मार न बैठें।

दूत—(जेब से निकाल कर पत्र देता हुआ) जहाँपनाह बादशाह सलामत का यह हुक्मनामा हुज़ूर के नाम।

(राजा का कुरसी परसे उछल कर खड़े होकर पत्र लेना ; वैद्य और मंत्री का भी खड़ा होना। मंत्री का वैद्य को धीरे धीरे हटाकर राजा से दूर करना, ख़ुद भी दूर खड़ा होना)

राजा—(राजा पत्र लेकर और खोलकर उसे बड़े ग़ौर से चारों ओर से देखता हुआ कभी मुसकराहट और कभी गुस्सा—यों तरह तरह के मुँह बनाता है मानों पढ़ ही रहा हो ; थोड़ी देर बाद मंत्री को देता हुआ) लो जी लो, तुम्हीं पढ़ो, हम तो पढ़े नहीं हैं। (दूत की तरफ़) हम कोरे किल्किल् काँटे खींचना नहीं जानते, हम तो लड़ाई के मैदान में तलवार की क़लम और ख़ून की सियाही से लिखना जानते हैं। (वैद्य और मंत्री एक दूसरे की तरफ़ देखकर मुश्किल से हँसी रोकते हैं) ज़रा सुनाओ तो क्या हुक्मनामा है ?

मंत्री—(पढ़ता हुआ) इसमें यह लिखा है :—

'बहुत दिन होगये थे राह तकते,
मगर वह शुभ घड़ी है आज आई।
ख़ुश होंगे आप सब यह जान करके,
छिड़ी है फिर पठानों से लड़ाई।

कि जिससे दूर होंगे दिल के काँटे,
सजाओ फ़ौज आओ जल्द भाई।
खुला है क्षत्रियों को स्वर्ग का द्वार,
कि तीनों लोक में पाओ बड़ाई।'

(यह सुनते ही राजा साहब यकायक मियान से तलवार निकाल कर एक आध हाथ दिखाते हैं ; मंत्री, वैद्य, और दूत उनके इस करतब से डर कर कुछ कुछ पीछे हटकर खड़े होते हैं ; राजा साहब एक एक की तरफ़ तलवार का ऐसा इशारा करते हैं मानों डराते हों, दूत हक्का-बक्का रह जाता है, वैद्यजी काँपने लगते हैं, मंत्री भागने की फ़िक्र में घबराहट के साथ बार बार दरवाज़े की तरफ़ देखता है)

राजा—(हाँफते हुए) हाँ, कुछ यह न समझना, जाओ मंत्रीजी, इसके जवाब में अर्ज़ कर दो कि हम अभी अपनी फ़ौज लेकर ख़िदमत में हाज़िर होते हैं।

मंत्री—घणी खमा, अन्नदाता, जो हुक्म।

(तीनों गये)

(रानी का प्रवेश)

रानी—यह क्या गड़बड़ थी ? कौन था ?

राजा—बादशाह के यहाँ से लड़ाई पर चलने के लिये हुक्मनामा आया था।

रानी—अच्छा !

राजा—वैद्यजी अभी हाल एक ख़ास तरह का रोग मुझको बतलाते थे, (रानी की तरफ़ प्रेम से देखता हुआ) मालूम

होता है कि उस रोग की जड़ तुम्हीं हो, क्योंकि तुम्हारी सूरत देखते ही उस रोग रणछोड़सिंही का दौरा हो आता है।

रानी—भला! कौन सा है वह दुष्ट रोग?

राजा—वैद्यजी कहते थे कि लड़ाई पर जाने से फेफड़ा बिगड़ जायगा।

रानी—अच्छा!

राजा—गठिया हो जाने का भी डर है, क्योंकि वहाँ सरदी बहुत पड़ती है।

रानी—(हँस कर) चार छः खच्चरों पर लाद कर लिहाफ़ और कम्बल लेते जाना।

राजा—वहाँ एक अजब तरह का बुख़ार फैलता है जिसमें आदमी दो दिनमें, बल्कि दो घंटे में, बल्कि दो मिनट में, बल्कि दो सेकंड में, बल्कि पलक मारते ही मर जाता है।

रानी—तो वहाँ जाकर पलक न मारना। मेरी राय में तो यह बुख़ार योगियों या पुण्यात्माओं के ही लिये होगा जिसमें उन्हें अधिक कष्ट न झेलना पड़े।

राजा—वैद्यजी कहते थे कि उसकी कोई भी दवा अभी तक नहीं निकली।

रानी—जी।

राजा—वहाँ एक तरह की लकड़ी होती है जो चाहे जब, आपसे आप धुआँ देने लगती है। उस धुएँ से घुटकर पहली

लड़ाई में दस हज़ार जवान खेत रहे थे।

रानी—बेशक रहे होंगे।

राजा—वहाँ की हवा में एक ख़ास तरह के जर्म उड़ते रहते हैं जो साँस के साथ भीतर जाकर बड़े बडे कीड़े बन जाते हैं।

रानी—खूब !

राजा—यहाँ तक कि कभी कभी साँप से भी बड़े।

रानी—वाह !

राजा—यानी जो लंबे जर्म होते हैं उनका यह हाल होता है, और जो चौखूँटे या गोल होते हैं वे भेड़िये, तेंदुए, बकरी—

रानी—यो ऊँट ?

राजा—हाँ ऊँट—

रानी—और हाथी ?

राजा—हाँ, हाथी, शेर वग़ैरह की शक्ल धारण कर लेते हैं।

रानी—तो पेट में समाते कैसे होंगे ?

राजा—कहने का मतलब यही है कि समाते कहाँ हैं ? उधर उन्होंने शरीर धारण किया कि उससे पहले ही आदमी ख़तम।

रानी—भला !

राजा—उधर जादू भी चलता है।

रानी—सो क्यों नहीं।

राजा—लेकिन क्षत्री-धर्म भी बड़ा कठिन है, पालन करना ही पड़ता है।

रानी—जी हाँ, इसमें शक क्या है।

राजा—तो मैं कुछ डरता थोड़ ही हूँ! अजी वाह, लो बोलो, कहीं क्षत्री का बालक डर सकता है? डरना तो हम लोग जानते ही नहीं।

रानी—कौन आप को डरपोक बतलाता है?

राजा—आज तो कोई नहीं, पर शायद कल को कोई बतलाने लगे।

रानी—च.खुश! आप क्षत्री हैं, आप का धर्म है।

राजा—मैं शत्रु से नहीं डरता, और न धर्म से डरता हूँ, मैं तो तुमसे डरता हूँ; कहीं तुम पीछे यों न कह बैठो कि मुझ से बिना पूछे लड़ाई में क्यों चले गये।

रानी—मैं यों क्यों कहने लगी।

राजा—पीछे से कहीं तुम यों न कहो कि मुझे भी क्यों न लेते गये।

रानी—भला यह भी कोई बात है। जाने का मन नहीं है तो न जाओ, मेरे सिर क्यों चपेकते हो? तरह तरह के बहाने बनाने से फ़ायदा?

राजा—सच बात तो यह है कि लड़ाई तो तुम्हारे साथ ही हो सकती है।

रानी—(चौंककर) मेरे साथ लड़ाई! क्या मतलब? क्या मुझ से लड़ना चाहते हो?

राजा—नहीं नहीं; भला तुमसे कैसे लड़ सकता हूँ? तुमसे

लड़कर कहाँ रहूँगा? मेरा मतलब यह था, कि अगर तुम भी मेरे साथ लड़ाई में मौजूद रहो तो मैं ज्यादा बहादुरी दिखाऊँ।

रानी—(ताने के साथ) क्योंकि मैं तुम्हें पीछे से शाबाशी देती जाऊँ और तुम्हारी पीठ ठोकती जाऊँ—क्यों न? आज तुम्हें क्या हो गया है जो सबेरे से ही मुझ से लड़ते उठे हो?

राजा—मैं तुम्हारे बिना लड़ाई में ज़िन्दा नहीं रह सकता।

रानी—लड़ाई में ज़िन्दा रहना! क्या यह भी कोई अपने हाथ की बात है?

राजा—हाँ, अगर तुम मेरे साथ हो तो मैं बिना मौत न मरूँ।

रानी—तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई। लड़ाई तुम्हारा धर्म है और एक शुभ काम है, डकैती से कहीं अच्छा—

राजा—अच्छा, तो शास्त्र की आज्ञा है कि कोई शुभ काम या धर्म का काम पूरा फल नहीं देता जब तक कि अपनी स्त्री को साथ लेकर न किया जाय।

रानी—ख़ूब!

राजा—और भला तुम्हीं सोचो—जब मेरा एक हाथ कट जायगा, एक पैर कट जायगा, एक आँख फूट जायगी तब मैं कैसे लड़ सकूँगा और कौन वहाँ पर मेरी मदद करेगा?

रानी—ईश्वर मदद करेगा; भला मैं क्या कर सकती हूँ। पर यह तो बतलाओ कि तुमने यह कैसे फ़र्ज़ कर लिया कि

तुम्हारा एक हाथ या पैर नाकाम हो जायगा ?

राजा—फ़र्ज़ ? फ़र्ज़ कैसा ? यह तो बनी बनाई बात है ; भला कहीं आधे अंगवाला आदमी भी लड़ सकता है ? धर्मशास्त्र इस बात की गवाही है कि तुम मेरा आधा अंग हो— यानी बीच में से ठीक आधा—आधा सिर, एक आँख, आधी नाक, आधा मुँह, आधा धड़, एक टाँग, बस योंही समझ लो। अगर तुम साथ न हुईं तो मेरी ताक़त आधी से भी कम रह जायगी, लेकिन अगर तुम साथ रहीं तो वह दूनी से भी बढ़ जायगी। कहो अब क्या कहती हो ?

रानी—(झुँझला कर) मेरी राय तो यह है कि तुम अपने आधे अंग को यहीं आराम करने दो, अकेली मुझे ही लड़ाई पर जाने दो।

राजा—भला यह कैसे हो सकता है ? (झूठी बेचैनी दिखाता हुआ) आज मेरे सिर में दर्द है।

रानी—तो मैं कहती तो हूँ कि जबतक तुम्हारे सिर का दर्द अच्छा न हो जाय तबतक तुम यहीं रहो, मैं जाती हूँ। दर्द अच्छा हो जाने पर वहाँ आकर अपना काम सँभाल लेना।

राजा—(दीनता दिखाता हुआ) तुम्हारे बिना यहाँ मेरी ख़बरदारी कौन करेगा ?

रानी—और न वहाँ कोई करेगा ! यह तो हठधर्मी ठहरी।

राजा—(झूठमूठ को रूमाल से नाक मरोड़ता हुआ) मुझे ज़ुकाम होगया है ज़ुकाम।

रानी—क्यों नहो, अभी देखते जाइये क्या क्या होता है। महाराज, वहाँ तुम्हारे न जाने से हमारे कुल की बदनामी होगी, कलंक भी लगेगा और राज भी छिन जायगा।

राजा—(प्रेम के साथ) तुम तो न छिन जाओगी।

रानी—ख़ूब !

राजा—मुझे रोग रणछोड़ सिंही होगया है जिसे "पलायन" भी कहते हैं।

रानी—(झुँझलाकर) मैं अभी दवा लाती हूँ। (भीतर जाकर नंगी कटार छिपाकर लाई)

राजा—कहो क्या दवा लाईं ? आज तो काटे ही खाती हो, गोया लाल लाल आँखे करके डराती हो। ज़रा हँस तो दो।

रानी—महाराज, क्षत्री-धर्म की यह बेइज़्ज़ती मैं नहीं सह सकती।

राजा—तो न सहो।

रानी—न तो आप लड़ाई पर जाते हैं और न मुझे जाने देते हैं ! अगर मैं न होती तब तो तुम ज़रूर ही जाते।

राजा—हाँ, क्या कहूँ, तुम्हें अकेली नहीं छोड़ सकता।

रानी—(झुँझलाकर) क्यों ? क्या मुझे चील उठा ले जायगी या मोर चुग जायगा ?

राजा—बस अब क्या कहूँ।

रानी—देखो, बेफ़ायदे की बातें तो बहुत हो चुकीं ; अब या तो

तुम लड़ाई का साज सजकर अपने धर्म का पालन करो, वरना फिर लाचार होकर मुझे अपने धर्म का पालन करना पड़ेगा।

राजा—वह कैसा ?

रानी—(कटार निकाल कर छाती पर रखती हुई) ऐसा ; अभी जान देती हूँ तब तुम निश्चिन्त होकर लड़ाई पर आना।

राजा—(छीना झपटी करके कटार लेता हुआ) यह क्या ? यह क्या ?

रानी—यह न समझना, मेरे पास हीरे की कनी है ; अभी खाये लेती हूँ।

राजा—भला क्यों ? आख़िर मैंने तुमसे कुछ कहा भी तो नहीं है।

रानी—तो मैं तो तुमसे कह रही हूँ।

राजा—क्या ?

रानी—यही कि या तो हमारे कुल की लाज बचाने का काम करो वरना—

राजा—भला यह क्या पागलपन ? हम जायँ या न जाँय, तुम अपनी नन्हीं सी जान से क्यों आरी आती हो ?

रानी—लेक्चरबाज़ी तो बहुत हो चुकी ; अब ज़्यादा कहने सुनने की गुंजायश नहीं है। (अंगूठी में से हीरा निकाल कर मुँह में रखती हुई) यह लो निगलती हूँ।

राजा—तो न मानोगी—भला सोचो तो।

रानी—यह निगला।

राजा—नहीं, नहीं, अच्छा लो मैं जाता हूँ।

रानी—तो उठो, करो तैयारी।

राजा—(उठकर चलता हुआ) अच्छा लो चला, पर यह तो बतलाओ कि यह हिकमत अमली तुमने किससे सीखी—यह रोग रणछोड़सिंही उर्फ़ पलायन की मुजर्रिब दवा—

रानी—अब जाते हो या मैं—

राजा—अरे बाबा यह लो। देवी, तुम मानोगी कब—(लौट लौटकर देखता जाता है ; रानी उसके पीछे बार बार निगल जाने की धमकी सी देती हुई जाती है।)

सीन ७

अवध में एक जंगली रास्ता।

(सुधुआ का प्रवेश)

सुधुआ—हा शोक ! देखो आज इस अवधपुरी की दशा !

कभी थी राम के चरनों से यह हुई पावन,
चहल पहल थी अजब सब सुखों के थे साधन ;
भक्त करते थे भजन और थी प्रजा भी मगन,
आज देखो तो यहाँ आघुसे हैं सब औगुन ;
आज बाबाओं की है धूम यहाँ चारों ओर,
दग़ा, फ़रेब, झूठ और ख़राबी का ज़ोर ;
विरागियों के हर जगह पै अखाड़े हैं खड़े,
हो रहे पाप जहाँ हर घड़ी बड़े से बड़े ;

है हविस दिल में कि चेलों का अब बढ़े नम्बर,
चेलियों की न कमी हो—हो ख़ज़ाने में ज़र ;
धर्म के नाम पै धोखा जिसे लेना हो ले,
मंत्र के मोल में सर्वस जिसे देना हो दे ;
रंडियों की है यहाँ धूम शराबों की महक,
शिष्यजी क्या न करें जब गये बाबा हैं बहक ;
लम्बे लम्बे हैं तिलक पर है बहुत छोटा दिल,
राम का नाम है मुँहपर, है कलेजे में सिल ;
कौन सा पाप है करते नहीं जिसको बाबा ?
कौन सा ताप है हरते नहीं जिसको बाबा ?
हर रहे हैं जो दुराचार से तीरथ में धन,
हैं मेरी राय में फिर जन्म लिये राक्षस गन ;
राम के नाम की महिमा को घटाकर जो यों,
ले रहे राम से बदला हैं पुराना मानों ।

(प्रवेश बुधुआ और तुलसी०)

तुलसी०—कहो सुधुआ, क्या कर रहे हो ? भोजन भजन का सामान किया ?

सुधुआ—हाँ महाराज किया ।

तुलसी०—देखो सुधुआ—बुधुआ, तुम दोनों मेरे लिये बड़ा कष्ट उठाते हो।

बुधुआ—वाह, महाराज!

सुधुआ—भला यह आप क्या कहते हैं!

बुधुआ—हमारे अहो भाग्य हैं जो आप सरीखे महात्मा की सेवा का मौक़ा मिलता है।

तु०—अच्छा तुम यह तो बतलाओ—तुम तो बड़े संस्कारी मालूम होते हो—भला तुम रहने वाले कहाँ के हो?

सु०—महाराज, हम रहनेवाले ज़िला बनारस के हैं और अच्छे ख़ानदान के क्षत्री हैं। आज भी हमारा फुफेरा भाई टोडर सिंह बड़ी इज़्ज़त के साथ वहाँ रहता है—गाँव हैं, ज़मींदारी है, उसके मिज़ाज की और चाल चलन की तारीफ़ हम आपसे कहाँतक करें।

तु०—फिर तुम वहाँ से चले क्यों आये?

सु०—बात यह हुई कि बाबा विश्वनाथजी के मन्दिर में एक रोज़ मैं दर्शन करने गया हुआ था। वहाँ देखा तो दो पुलिस-वाले एक बेचारे परदेशी गृहस्थ यात्री को उसका धन छीनने के लिये, ज़बर्दस्ती पकड़े लिये जाते हैं और वह रोता बिलखता चला जाता है। मुझे दया आई और मैंने उसे छुड़ा दिया और सिपाहियों को पीटकर भगा दिया। इसपर पुलिस हम लोगों से दुश्मनी मानने लगी और दिन रात हमको तंग करने की फ़िक्र में रहने लगी।

आख़िर हमारे ऊपर झूठा जाल बनाया और डकैती के इलज़ाम में हम लोगों को फाँस कर सज़ा करादी, हालाँकि हमारा कोई सरोकार डाकुओं या चोरों से नहीं था।

सु०—जेलख़ाने में हमको बड़े बड़े दुःख झेलने पड़े, महाराज। पाँच बरस बाद वहाँ से हम दोनों दीवार कूदकर भागे और दो तीन दिन के अन्दर ही हमने उन पुलिस अफ़सरों के, रात में, सिर काट लिये जिन्होंने हमें झूठमूठ फाँसा था।

बु०—वहाँ से भागकर हम रामनगर के उधर घने जंगलों में रहने लगे और इधर उधर लूट मार करके अपनी गुज़र करने लगे, क्योंकि बदनाम तो हो ही चुके थे। जब पुलिस ने वहाँ भी हमारा सुराग़ लगा लिया तब हम राजा लूटमाल सिंह के आसरे में आ रहे और गुन्डापन और डकैती करके कुछ राजा को देकर और कुछ ख़ुद लेकर गुज़र चलाने लगे।

सु०—आख़िर आपकी जान लेने की कोशिश में हमारे दिन फिरे

(दोनों तुलसी० के पैरों में गिरते हैं)

बु०—और आपने हमारी आँखे खोलदीं।

सु०—वरना हमने इस जनम में कितने और क्या क्या पाप किये हैं सो हमें ख़ुद नहीं मालूम, और न उनकी गिनती हो सकती है। हैं तो हम नरक के योग्य, पर आपके सत्संग से हमारी भी गति सुधर जायगी। (पैरों पर गिरते हैं)

(भेष बदले हुए लूटमाल सिंह का प्रवेश)

लूट०—(घबराहट के साथ) बाबाजी महाराज, मुझे चेला कर

लीजिये, मैं बड़ी आफ़त में हूँ। संसार में मेरा अब कोई नहीं। अब मैं आप ही की शरण हूँ। (छ्धुआ और बुधुआ उसे पहचान कर अचरज के साथ एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं।)

तु०—तुम कौन हो? क्या चाहते हो?

लू०—बस महाराज, मैं कुछ नहीं चाहता हूँ। न जाने मैं क्या चाहता हूँ? मैं यही चाहता हूँ कि किसी मठ-मन्दिर में कुछ सेवा किया करूँ। मैं बड़ा दुखी हूँ, मुझे शरण में लीजिये, मेरी रक्षा कीजिये, नहीं तो किसी कुए पोखर में गिरकर अपने प्राण—

सु०—(ज़ोर से) राजा साहब!

बु०—महाराज!

तु०—यह क्या?

लू०—अरे तुम कौन? क्या यहाँ भी मेरी जान के गाहक मौजूद हैं? (एक एक की तरफ़ ग़ौर से देखकर) अरे सुधुआ! बुधुआ! और यह कौन? यह क्या?

दोनों—महात्मा तुलसीदास।

लू०—कौन महात्मा?

सु०—वही जिसको मारने के लिये आपने हमें भेजा था।

लू०—(घबराहट के साथ) तो तुमने अब तक उसे मारा नहीं? सच कहो, तुम्हारा यह क्या हाल देखता हूँ? बचाओ मुझे।

सु०—उसीने हमें मार दिया।

लू०—कैसे ?

तु०—बुरी वासना और अहंकार छुड़ाकर ।

लू०—(घबराकर) अरे बाबा, मेरी जान बचाओ ; तुम कोई भी क्यों न हो । (तु० के पैरों पर गिरता है) अगर तुम मेरे मित्र हो तो मुझे बचाओ, शत्रु हो तो भी बचाओ क्योंकि मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । मुझे इस वक्त अपना पराया कुछ नहीं सूझता ।

तु०—राजन्, क्या बात है, कुछ कहिये भी । हम लोग आपको क्या सहायता कर सकते हैं ? श्रीरामचन्द्रजी महाराज के चरणों का भजन कीजिये, सब कुशल होगी ।

राजा—बात यह हुई कि मुझे कई बार आगरे से बुलावा आया—मगर मैं गया नहीं । तीन लाख रुपया शाही ख़ज़ाने में अदा करना था सो भी मैंने नहीं किया । इधर बादशाह ने पठानों से ज़बरदस्ती लड़ाई छेड़ दी है ; उसमें शामिल होने का हुक्मनामा मेरे पास आया, पर मेरे जाने में ढील हो गई क्योंकि, महाराज, आप जानते हैं कि वह—कि वह अधर्म का काम था । अब मैं अपनी जान बचाकर इधर उधर छिपता फिरता हूँ । अब मुझे गिरफ्तार करने के लिये वहाँ से फ़ौज आई है और जगह जगह सिपाही मुझे खोजते फिर रहे हैं । कुछ इधर भी आये हुए हैं । नजाने मुझे कब पकड़ लें । (हाथ जोड़कर) महाराज, तुम ब्राह्मण हो, मैं क्षत्री । तुम मेरे धर्म के गुरु हो ;

जाने या अनजाने जो वैर मैंने तुम्हारे साथ किया हो उसे भूलकर मेरे प्राण बचाओ।

तु०—राजन्, मत घबड़ा, सच्चे दिल से भगवान रामचंद्रजी का भजन कर, तेरे सब दुःख दूर हो जायँगे और कोई भी तेरा कुछ कर न सकेगा क्योंकि—

जाको राखे साइयाँ, मार सके नहिं कोय,
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।

यह भी तेरा कोई पाप ही उदय हुआ है जिसने तुझे यों नाच नचा रक्खा है। तू दुःख मत करे बल्कि ख़ुशी मना कि तेरा वह पाप तेरे इस थोड़ी देर रहनेवाले दुःख के बहाने क्षीण हो रहा है।

लू०—महाराज, आपके वचनों से मुझे बड़ी शान्ति मिल रही है। हा, मैं कितना नीच हूँ कि आपको पहले से न पहचाना और ज़रा सी बात के लिये आपकी जानका गाहक होगया। इसमें शक नहीं, महाराज, आप हमारे गुरु हैं, और हमारा क्षत्रीपन का सारा घमंड आप ही लोगों के चरणों की कृपा से टिका हुआ है। अब मेरा कुसूर माफ़ कीजिये और मुझे बचने का उपाय बताइये।

तु०—मेरी राय में तुम्हारा यों चोर की तरह छिपते फिरना ठीक नहीं। तुम ख़ुद आगरे जाकर बादशाह से सब हाल साफ़ साफ़ कह दो। अगर बादशाह तुम्हें सज़ा दे तो उसे ख़ुशी से भोगकर अपने पापों से पिंड छुड़ाओ, और

भगवान श्रीरामचन्द्रजी के भजन में लगो। अगर बादशाह तुमको माफ़ कर दे तो तुम भगवान को धन्यवाद दो और अपना राज-काज सँभालो, और हमेशा याद रक्खो कि ऐसे राज के लिये, जिसका नतीजा डर और बेइज़्ज़ती है, हमें परमात्मा को, जो सब का साक्षी और न्यायकारी है, न भूलना चाहिये।

लू०—आज मेरा जीवन धन्य हुआ।

तु०— (गाना)

मन पछतैहौ अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु,
करम वचन अरु हीते॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप,
बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम सँवारे,
अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जान स्वारथरत,
न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजेंगे पामर,
तू न तजत अबही ते॥

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़,
त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ
विषय भोग बहु बीते॥

सब—धन्य है, धन्य है।

(नेपथ्य से 'पकड़ो' 'पकड़ो' की आवाज़; एक अफ़सर के साथ चार बादशाही सिपाहियों का आकर राजा को गिरफ़्तार करना)

अफ़सर—चलो ले चलो—(राजा से) बहुत छिपे फिरते थे हज़रत।

छू०—चलिये हज़रत—

साधु की संगत ने मेटा
डर का सब नामो निशान,
कर्मफल भोगूँगा हँसकर
देह को जड़ वस्तु जान।
कर्मयोगी मैं बनूँगा
तज के सब मानापमान,
काम दुनिया के करूँगा
पर रहेगा प्रभु का ध्यान।

पाप को कर चीण,

दुख में भी सदा सुख पाऊँगा,

हँसता हँसता एक दिन

संसार को तर जाऊँगा।

जिसपे हो गुरु की कृपा

उसको भला फिर किसका डर,

सब सुखों की खान है

गुरु की इनायत की नज़र।

(अफ़सर से) आइये, चलिये, मुझे

चाहे जहाँ ले आइये,

हट गया परदा कि अब

जो चाहिये करवाइये।

(गये)

तु०—चलो अब हम लोग भी भजन पूजन से निबट कर काशी चलने की तैयारी करें।

(गये)



सीन ८

(महल के कमरे में रानी और बाँदी)

रानी—(आप ही आप) मैं आग की चिंगारी हूँ, मुझे कौन छू सकता है ? (बाँदी से) हाँ, तो तूने क्या सुना कि मंत्री मालमारू मल, मेजर हारूँ खाँ और कप्तान भग्गासिंह भी बादशाही फ़ौज से मिल गये हैं ?

बाँदी—हाँ, भीतर ही भीतर मिल गये हैं और महलों पर घेरा डलवा कर आप को और कुँवर को क़ैद करा दिया चाहते हैं।

रानी—इसका क्या सबूत कि वे लोग हम दोनों को क़ैद करा दिया चाहते हैं ?

बाँदी—(सामने देखकर इशारा करती हुई) देखिये, सामने कुँवरजी आरहे हैं ; देखें वे क्या ख़बर लाये क्योंकि मैंने उन्हें भी एक मौक़े की जगह भेष बदल कर खड़ा कर दिया था।

(कुँवर का प्रवेश)

रानी—क्यों बेटा, यह क्या सुनती हूँ ?

कुँवर—माँ, सत्यानास ! फ़ौज के सब सरदारों के साथ हमारा मंत्री भी उधर मिल गया। अब बचाव की कोई सूरत नहीं।

रानी—(ग़ुस्से से) तो क्या होगा ?

कुँवर—हम सब को क़ैद हो जाना होगा, महल खाली करना होगा और इसमें कप्तान भग्गासिंह का राज होगा।

रानी—भला !

कुँवर—ऐसा ही कुछ लालच देकर वे लोग मिला लिये गये हैं।

रानी—(गुस्से से) हरगिज़ नहीं ! क्या वे लोग हमारे पुराने नमकख़्वार होकर हमारे साथ दग़ा करेंगे ? आज महाराज नहीं हैं तो क्या हमारे लिये ईश्वर भी नहीं है ?

कुँ०—माँ, इसमें कुछ भी शक नहीं ; अभी सलाहें होरही थीं। ये लोग हमारे तुम्हारे किसी के नहीं—ये तो रुपये के दास हैं। पुराने नमकख़्वार हैं यह सच है, लेकिन लोभ और लालच की बरसात में वह पुराना नमक अब पसीज गया है—गल गया है—पानी होगया है।

रानी—दो तीन महीने से वक्तपर तनख़्वाह नहीं मिली इसी लिये ?

कुँ०—हाँ, इसी लिये।

रानी—(गुस्से से बाँदी की तरफ़) अच्छा, ज़रा बुला तो लाओ मंत्री को। (बाँदी का जाना)

कुँ०—जो कुछ ज़ेवर वग़ैरह बाँधना हो बाँध ले चलो और चोर दरवाज़े से निकल चलो।

रानी—मैं राजपूत की बेटी हूँ ; कुँवर, धिक्कार है तुझे और मेरी कोख को—जो तू ऐसी बातें करता है।

कुँ०—और पिताजी—

रानी—चुप रह, देखता तो जा, मैं इन सबको कैसा मज़ा चखाती

हूँ। (प्रवेश मंत्री का) कहिये मंत्रीजी, क्या हालचाल हैं? बादशाही फ़ौज क्या चाहती है, और आपने क्या करना विचारा है?

मंत्री—महारानीजी, बड़े संकट का समय है; बादशाही फ़ौज बहुत ज़बरदस्त है; हम लोग उसका सामना नहीं कर सकते।

रानी—हमारे सरदार और मेजर क्या चाहते हैं?

मंत्री—(रुखाई से) उन्हीं से पूछिये।

रानी—आज क्या आपकी तबीयत कुछ अलील है जो आप इस तरह रूखी रूखी बातें करते हैं?

मंत्री—रूखी रूखी बातें नहीं, भला मुझे फ़ौज का हाल क्या मालूम? इसी से कहता हूँ। (आप ही आप) दो महीने से तनख़ाह नहीं मिली इस लिये रूखी रोटी खा रहे हैं, चिकनीं-चुपड़ी बातें कहाँ से करें?

रानी—(बाँदी से) मेजर हारू ख़ाँ और सरदार भग्गा सिंह को बुला। (बाँदी का जाना) मतलब यह है कि महाराज तो हैं नहीं कि जिनपर उन लोगों का दाँत था, अब रही मैं, सो मेरी इज़्ज़त-आबरू लेने की कोशिश करना मर्दों के लिये कुछ अच्छी बात नहीं। (कप्तान और मेजर का आना) अगर आप लोग मेरी इज़्ज़त नहीं बचा सकते तो साफ़ जवाब दीजिये—मैं अपना इन्तज़ाम करूँ। (कप्तान और मेजर एक दूसरे की तरफ़ कनखियों से देखते हैं) यानी, महाराज

की तलाश में तो उन्होंने फ़ौजें भेज ही दी हैं, जब तक उनका कुछ पता न लगे तब तक मुझ अबला से छेड़-छाड़ करना ठीक न होगा। कहिये आप लोग क्या कहते हैं ?

कप्तान—महारानीजी, हम तो जहाँ तक हो सका आपको बचाने की ही कोशिश करेंगे मगर—

रानी—मगर क्या ?

मेजर—मुग़लई फ़ौज इस बात पर तुली हुई है कि महलों को अपने क़ब्ज़े में करले।

रानी—मुग़लई फ़ौज महलों को अपने क़ब्ज़े में करेगी और आप लोगों से कुछ न होगा ?

कप्तान—भला हम लोग क्या कर सकते हैं—इतनी बड़ी फ़ौज के सामने !

रानी—तो आप लोग चाहते हैं कि मेरी इज़्ज़त उतर जाय और मेरा कुँवर गली गली भीख माँगता डोले ?

कप्तान—हम तो नहीं चाहते लेकिन—

मेजर—क्या करें लाचारी है।

रानी—(गुस्से से उछल कर और छः नला तमंचा निकाल कर तीनों के सामने करती हुई) ख़बरदार ! नमक-हरामो ! बेइमानो ! बदमाशो ! ख़बरदार ज़रा भी हिले तो, नहीं अभी ख़तम कर दूँगी—मैं राजपूत की बेटी हूँ। ऐसे ही खड़े रहो। (बाँदी से कुछ इशारा करना, बाँदी का सीटी

बजाना जिससे कई बाँदियों का तमञ्चे व तलवारें लेकर दाखिल होना, रानी का उन से कहना) घेर लो इन कम्बख़्तों को, अगर ज़रा भी हाथ पैर हिलायें या हथयार उठाने की कोशिश करें तो वहीं मार दो। इनकी मुश्कें बाँध कर इन्हें काठ में दे दो। जब घर के भेदी हाथ में आगये तो, बाहरवालों का अब क्या डर है।

(मुश्कें बाँधी जाती हैं। परदा गिरता है)

दूसरा अंक

सीन १

काशी का एक जंगली रास्ता—एक वृक्ष के नीचे एक प्रेत ;

प्रेत—(आप ही आप) ब्राह्मण सचमुच ही बड़ा दयालु है ; रोज़ गङ्गाजी से लौटते समय इस पेड़ की जड़ में जल डाल कर मुझे तृप्त करता है। इस अधम प्रेत-योनि पर एक सच्चे ब्राह्मण की दया ! सच है, सच्चे ब्राह्मण हमेशा पतितों पर दया रखते हैं। अब मेरी गति सुधरने में क्या शक है ? आज इस ब्राह्मण से सामने बात चीत करूँ तो कैसा ? बेचारे का कुछ दुख दर्द हो तो दूर कर दूँ। उसे भी यह मालूम होजाय कि यहाँ पानी डालने से एक प्यासे जीव की प्यास बुझती है। (इधर उधर देखकर) ब्राह्मण के आने का वक्त तो हो गया है ; तब तक मैं (पेड़ पर चढ़ जाता है, उधर से तुलसीदास आते हैं और लोटे से जल डालते हैं)

प्रेत—(पेड़ पर से) हे ब्राह्मण देवता, मैं तेरा एहसानमंद हूँ। माँग, अपने इस उपकार के बदले में क्या माँगता है ?

तु०—(चौंककर और ऊपर देखकर) यह कौन ? अरे भाई कौन बोलता है ? किससे कहता है ? सामने आओ।

प्रेत—मैं प्रेत हूँ और इसी पेड़ पर रहता हूँ। तू रोज़ पेड़ की जड़ में जल डाल जाता है उससे मेरा बड़ा उपकार होता है। बोल, उसके बदले में तुझे क्या दूँ ?

तु०—बाबा, तो तू प्रेत हो या कोई और, पहले तो मैं यह चाहता हूँ कि तू मेरी आँखों के सामने आ। (प्रेत का सामने आना) हाँ अब बतला कि क्या कहता है।

प्रेत—हे देवता, तेरे उपकार का कुछ बदला तुझे देना चाहता हूँ। जो तू माँगेगा मैं दूँगा।

तु०—(अचरज और आशा से आप ही आप) यह अच्छा मौक़ा है। (प्रेत से) जो मैं माँगूँगा ?

प्रेत—हाँ—

तु०—तू देगा ?

प्रेत—हाँ—

तु०—जो मैं माँगूँगा ?

प्रे०—हाँ—

तु०—इस जीवन में मेरी एक ही इच्छा है और वह यह कि भगवान श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करूँ। दूसरी कोई भी इच्छा मेरी नहीं है। इसलिये अगर तू मुझ से ख़ुश है तो, भाई, मुझे प्रभु का दर्शन करादे।

प्रेत—(हँसकर) अगर मुझ में यही ताक़त होती तो क्यों आज मैं प्रेत-योनि में पड़ा सड़ता ! भाई, यह मेरी शक्ति के बाहर है ; तू ख़ुद ही सोच ले। बिना किसी पूरे

पहुँचे हुए भक्त की मदद के प्रभु का दर्शन होना बड़ा ही कठिन—बल्कि नामुमकिन है।

तु०—तो फिर ?

प्रेत—हाँ, अच्छा ख़याल आया—एक उपाय बतलाता हूँ, शायद काम सिद्ध हो जाय।

तु०—सो क्या ? कहो ?

प्रेत—तेरे भाग्य में दर्शन बदा होगा तो शायद उस उपाय से हो जायगा।

तु०—वह कौन सा उपाय है ? कहो तो—

प्रेत—गङ्गा किनारे उधर कर्णघंटा नाम की जो जगह है वहां रोज़ राम कथा होती है। वहाँ हनुमानजी एक बूढ़े कोढ़ी का वेश धरे और बहुत ही मैले-कुचैले कपड़े लपेटे रोज़ सबसे पहले सुनने आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। वे इसी जंगल में होकर जाते हैं और यहीं कहीं अन्तर्ध्यान होते हैं। अगर तू उन्हें घेरे और वे तेरे ऊपर कृपा करदें तो दर्शन होना नामुमकिन भी नहीं। उनके लौटने का यही समय है; मैं अब जाता हूँ, तबतक तू उनकी राह देख—

(चढ़ गया)

तु०—(हर्ष से) अहा ! क्या श्रीअञ्जनीनन्दन महावीरजी की कृपा से मेरी इच्छा पूरी होगी ? आओ महाराज आओ। रोज़ इधर से न भी आते हो तो आज अवश्य आओ और

श्रीरघुनाथजी के दर्शन कराकर मेरा जीवन सफल कराओ। अहा, जिस समय उनके दर्शन मुझे हों मेरा यह कलेवर छूट जाय, और यह जीव उनके चरणों की धूल का किनका बन जाय। मैं आपे में न रहूँ, पागल होजाऊँ, दीवाना होजाऊँ। हे प्रेतराज, हे चारों दिग्पालो, कोशिश करो कि हनुमानजी मुझसे ख़ुश होजायँ। आओ महाराज, आओ।

(गाना)

मंगल मूरति मारुत नंदन—
सकल अमंगल मूल निकंदन।
पवन तनय संतन हितकारी—
हृदय विराजत अवध विहारी।
मात पिता गुरु गणपति शारद—
शिवा समेत शम्भु शुक नारद।
चरण वन्दि बिनवों सब काहू—
देहु राम पद नेह निबाहू।
बन्दौं राम लषन वैदेही—
जो तुलसी के परम सनेही।

(एक तरफ़ देखकर) अहा, वह देखिये आ रहे हैं! देखूँ अब बचकर कैसे जाते हैं?

(प्रवेश हनुमानजी का कोढ़ी के वेष में—तुलसीदास का उनके पैरों पर गिरना)

हनु०—(झटक कर) हुश्त ! दूर हो—

तु०—(पैरों को ज़ोर से पकड़कर)

अतुलितबलधामं, स्वर्ण शैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं, ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकल गुण निधानं, वानराणामधीशं
रघुपति वर दूतं, वात जातंनमामि ।

हनु०—(झटक कर) अरे हट हट उधर, मुझे क्यों छूता है—पागल है क्या ?

तु०—ऐसा बहाना एक न चलेगा ; या तो कृपा कीजिये या यह ब्राह्मण प्राण देगा।

ह०—(झटक कर) हट हट, तू भूल गया, किसी और के धोखे में—

तु०—अब मैं धोखे में नहीं आ सकता ।

ह०—(झटक कर) हट उधर, नहीं अभी तेरा कचूमर निकाल दूँगा—जानता है, मैं जाति का हत्यारा हूँ ।

तु०—मेरे जन्मजन्मान्तर के पापों की हत्या तो आपने दर्शन देकर ही करदी, अब हत्या के लिये क्या बाक़ी है ?

ह०—(आप ही आप) यह हठीला अवश्य कोई सच्चा भक्त है (तु० से) तो तू है कौन ?

तु०—आपका और श्रीरघुनाथजी के चरणों का दास ।

ह०—अच्छा तो सामने आ।

तु०—आप भाग जायँगे।

ह०—अरे भोले,

उठ खड़ा हो, छोड़ दे डर, ले खड़े हैं हम यहीं,
प्रेम के बंधन में जकड़े भाग सकते हैं कहीं?

तु०—(खड़े होकर हाथ जोड़ते हुए) महाराज, आज मेरा भाग्य जागा।—

ह०—बस हो चुकी भूमिका।

तु०—कि आपने दर्शन देकर मेरा जन्म सफल कराया। मैं यही चाहता हूँ कि आपकी बदौलत श्रीरामचन्द्रजी महाराज के चरण-कमलों के दर्शन मुझे होजाने चाहियें, (पैर छूकर) महाराज, संसार भले ही छूट जाय, माया का भार जो यह शरीर है सो भले ही दूर हो जाय, भले ही कष्ट मेरे तन और मन को चूर करदें मगर मेरी इच्छा पूरी कर दीजिये।

ह०—(आप ही आप) भला कलियुग में यह भावना! और सो भी ऐसी दृढ़!! (तु० से) अच्छा ब्राह्मण, जाओ, तुमको कुछ दिनों बाद चित्रकूट में श्रीरघुनाथजीका दर्शन होगा, तब तक धीरज रक्खो। मैं तुम्हारी भक्ति से ख़ुश हुआ हूँ।

तु०—और आपका दर्शन?

ह०—(हँसकर) हे भक्तराज, हैं राम तुम्हारे प्यारे,
फिर हम तो उनके चाकर हैं बेचारे ;
जब प्रभुको नित्य रहोगे मन में धारे,
तो दास रहेंगे कैसे तुमसे न्यारे ?

(गये, उनके पीछे तु० भी गये)

सीन २

आम रास्ता

तु०—(आप ही आप) अहाहा, आज मेरा मनोरथ पूरा हुआ, आज मेरा नया जनम हुआ। समझ में नहीं आता इसके लिये किसे धन्यवाद दूँ। प्रेत को? हाँ, क्यों नहीं या रत्नावली को? बेशक। हे देवी, तेरी ही कृपा से आज मैं कौवे से हंस और मिट्टी से सोना हुआ हूँ।

(प्रवेश बिंध्य के राजा के दो आदमियों का, बहुतसा सामान लिये हुए)

आदमी—(एक एक कर पैरों पर गिरते हुए) श्रीमहाराज, आपके यहीं दर्शन होगये, हम आपकी कुटी तलाश कर रहे थे। महाराज, विन्ध्य देश की तराई के महाराजा साहब और महारानीजी ने आपके चरणों में अनेक प्रणाम कहकर निवेदन किया है कि हमारी यह तुच्छ भेंट

अवश्य स्वीकार कीजिये क्योंकि आपके आशीर्वाद से हम आगरे से सही सलामत लौट आये हैं, और हमको जो खिलत मिली है वह भी सब आपके ही प्रसाद से।

तु०—बड़ी ख़ुशी की बात है कि राजा इज़्ज़त के साथ लौट आया और श्रीहनुमानजी ने उसकी रक्षा की। असी पर हमारी कुटी है वहीं तुम चले जाओ, वहाँ सुधुआ होगा। थोड़ी देर में हम भी आते हैं।

(आदमी गये)

(बहुत से पंडितों का आना)

एक—(ज़ोर से) जब से आया है ऊधम मचा रक्खा है। (तु० से) बोलो जी बोलो, क्यों ब्राह्मणों की निंदा कराने पर उतारू हुए हो ?

दूसरा—बतलाओ यह तुमने क्या दुन्दमाल मचा रक्खा है।

तीसरा—जो तुम राम नाम की महिमा—क्या ऊँच क्या नीच—सब को समझाते फिरते हो।

तु०—पंडितराज, राम के नाम की महिमा सबको बतानी ही चाहिये।

पहला—यह वेद-विरुद्ध है।

दूसरा—वैद्यक शास्त्र में भी इसी प्रकार का विधान है।

तु०—महाराज, मेरे विचार में इस पर सब का अधिकार है।

दूसरा—तुम ब्राह्मण होकर ऐसी वार्ता करते हो, ज्ञात होता है तुम्हारे हृदय में लज्जा का नाम मात्र नहीं।

तीसरा—तुम ब्राह्मणों को नीचा दिखाते हो—मनमाना कर्म करते हो! स्मर्ण रक्खो, यह काशी है, अवध नहीं। यहाँ हर प्रकार से तुम्हारी दुर्गति करदी जायगी।

तु०—(मुसकरा कर) ओहो, आपने अपने मुखारविन्द को बड़ा कष्ट दिया।

पहला—बस तुमसे कह दिया है कि या तो सावधान रहो, और नहीं तो काशी को कलंकित न करो, क्योंकि इसमें तुम्हारे प्राणवायु को कष्ट होने का भय है।

दूसरा—देखो कैसा बगुला भगत बना खड़ा है। अरे पिशाच! ब्राह्मण-द्रोही!

तु०—धन्य है, धन्य है।

तीसरा—तेरे टुकड़े टुकड़े कराकर गङ्गाजी में फिकवा दिये जायँगे।

पहला—और कोई यह भी न जान पावेगा कि किस मूर्ख की मिट्टी पानी में पड़ी सड़ रही है।

दूसरा—तो अब बोल, अब क्या कथन करता है।

तु०—कुछ नहीं। ('बचो महाराज बचो' कहता हुआ एक महतर आया ; ब्राह्मणों का झट से अलग होना।)

भंगी—बचना महाराज, राम भला करें।

पं०—अरे दुष्ट, चांडाल, राम के नाम को अपनी जिह्वा पर लाकर अपवित्र करता है।

भंगी—छिमा करो महाराज, मैं अजुध्याजी का हूँ, आदत पड़ी

भई है। जय रामजी की।

(गुसाईं जी का दौड़कर उससे लिपट जाना, पंडितों का अचरज करना)

तु०—हे भक्त, तू हमारे इष्टदेव का नाम लेता है और उनकी पवित्र जन्मभूमि की धूलि से तेरा कलेवर बना है इसलिये तुझे धन्य है।

पहला—रे नीच तस्कर! तुलसीदास के बच्चे!

दूसरा—वर्णसंकर!

तीसरा—निर्लज्ज!

तु०—क्या हुआ?

पहला—तू ने भंगी को स्पर्श कर लिया!

दूसरा—उस को हृदय से स्पर्श किया!

तीसरा—तेरा यह साहस!

तु०—हे पंडितो, जिसके मुँह से भगवान का नाम भक्ति और श्रद्धा के साथ निकलता है वह पवित्र है। अपवित्र को भी पवित्र करने की ताक़त अगर भगवान के नाम और उनकी भक्ति में भी नहीं है तो किसमें है? अजामिल, गणिका आदि घोर पापियों को अपनानेवाले और भीलनी के जूठे बेर हँस हँसकर खानेवाले श्रीरामचन्द्रजी महाराज दया के भंडार हैं; उन्हें आप लोग अपनी इस हठधर्मी से क्यों छोटा दिखाते हो? वे समदर्शी हैं, उनका दरवाज़ा सबके लिये एकसा खुला हुआ है, बल्कि पापियों, चांडालों और नीचों के लिये और भी अधिक खुला है। सो हे

ब्रह्मदेवो, मुझे तो ऐसा नीच और चांडाल होना पसंद है जिसे भगवान अपनावें, संस्कार-हीन होते हुए भी कोरे ब्राह्मण-पन की ऐंठ में रहकर दोनों लोक बिगाड़ना मैं नहीं चाहता।

भं०—(तु० के पैर छूकर) महाराज, धन्न है धन्न है जो आपका दर्शन मैंने पाया। ('राम के नाम पर इस हत्यारे को कोई पानी दो' की आवाज) (हत्यारे का प्रवेश)

ह०—ए महराज, छिमा करो, मुझे क्या खबर थी जो आप लोग यहाँ विराज रहे हैं नहीं तो नहीं आता। क्या करूँ, प्यास के मारे जी अकुला रहा है, राम के नाम पै दया करके कोई—

तु०—(अपना कमण्डल देकर) ले, मेरे प्यारे भाई, यह पानी पी और अपनी प्यास बुझा। (पंडितों का अचरज करना और नाराज़ होना)

पहला—यह क्या ?

तु०—जब यह यों दीनता दिखाता हुआ राम के नाम का उच्चारण करता है और अपने किये हुए पाप पर पछताता है तो यह शुद्ध हो गया—इसमें क्या संदेह ?

दूसरा—तूने ऐसा क्यों किया ?

तीसरा—यह अधर्म ?

०—महाराज, आप लोग पंडित और शास्त्री होकर भी न तो पंडित हैं और न शास्त्री, क्योंकि आप सारे शास्त्र को

घोल गये पर उसका मर्म आपने न जाना। आप शास्त्र की मर्यादा को बढ़ाना या क़ायम रखना तो क्या, उलटा उसे घटाते हैं। ज़रा शास्त्र में देखिये तो कि राम नाम का क्या माहात्म्य लिखा है। भला सोचने की बात है कि राम का नाम लेने से पापियों ही का पाप दूर न होगा तो क्या पुण्यात्माओं का होगा? मैं दावे से कहता हूँ कि इसके पाप का क्षय हो गया है। आपको जिस तरह विश्वास हो कहिये, मैं करने को तैयार हूँ। हा, शोक, झूठी जाति उपजाति और भेद-भाव पैदा करके आपने सच्चे और ब्रह्म को जाननेवाले ब्राह्मणों को उत्तराखंड में भगा दिया, और ब्राह्मण नामधारी घमंडी ढफोलशंखों का अधिकार धर्म के ऊपर जमा दिया। याद रखिये—

जाति पाँति पूछे नहिं कोई,
हरिको भजे सो हरि का होई।

पहला—अरे कुलांगार, ब्राह्मण-द्रोही, राम नाम की महिमा शास्त्रों में लिखी है यह हमें ज्ञात है, किन्तु पापियों के लिये प्रायश्चित्त का भी तो विधान है, सो इसने अभी प्रायश्चित्त कहाँ किया है?

दूसरा—और बिना ही प्रायश्चित्त के तूने इसे अपने कमंडलु से जल पिला दिया!

तीसरा—अच्छा अधिक वार्तालाप की आवश्यकता नहीं। हमारा

यही कथन है कि इस हत्यारे और भंगी के हाथ से श्रीविश्वनाथजी के नन्दीजी मिठाई ग्रहण कर लेंगे तो हम समझेंगे कि ये निष्पाप हैं और तेरी वार्ता सत्य है।

पहला—और यदि न ग्रहण की तो बच्चू फिर तुम्हारी रक्षा नहीं; सब यह तुम्हारी कंठी-माला उतार ली जायगी और तुम्हें काशी करवट में पेल दिया जायगा।

दूसरा—कहो क्या कथन है? स्वीकार है?

तु०—हाँ, चलिये।

पहला—चलो।

तु०—(भंगी और हत्यारे से) चलो भाइयो।

(हत्यारे और भंगी के हाथ में हाथ देकर जाते हैं)

सीन ३

श्रीविश्वनाथजी का मंदिर।

(तुलसीदास का पंडितों के साथ आना। नन्दीजी के पास जाना)

तु०—हे नन्दीजी, भगवान श्रीरामचन्द्रजी का नाम लेने से अगर यह चांडाल पाप-रहित होगया हो, और इस भक्तराज भंगी को भगवान के दरबार में अपने कर्मों के अनुसार भक्तों में स्थान प्राप्त हो, और अगर श्रीरामचन्द्रजी के नाम से पापी बल्कि घोर पापी जन तर सकते हों, अगर छुआ-छूत और खानपान आदि की रोक सब बेफ़ायदा हों,

अगर पापी और झूठे ब्राह्मणों को नरक और सीधे और सच्चे अछूत समझे जानेवाले लोगों को अपने कर्मों के अनुसार अच्छी गति मिलती हो, तो इन विद्वान पंडितों के समाधान के लिये इस हत्यारे और भंगी के हाथ से आप इन पेड़ों को ग्रहण करके इनको, मुझे तथा सारी हिन्दू जाति को कृतार्थ कीजिये, और झूठे ढोंग पर सच्चे धर्म की विजय कराइये।

(उन दोनों का पेड़े खिलाना और नन्दीजी का खाना ; सब पंडितों का, अचरज से एक दूसरे की ओर देखना)

सीन ४

(चित्रकूट-नदी से लगा हुआ रास्ता ; ग़रीबी से पागल एक ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्राह्मण—अहाहाहा, हाथ आगया ! हाथ आगया ! जब तक यह शरीर है तभी तक दुख सुख है। 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसरी'। शास्त्रों में लिखा है कि 'असूर्या नाम ते लोका'—हँहँ। जो आदमी जान बूझकर मरता है वह ऐसे बुरे लोकों में जाता है जिनमें अँधेरा रहता है और वहाँ वह बड़े कष्ट पाता है। लेकिन जिनको इस उजाली पृथ्वी पर भी कष्ट ही कष्ट हैं वे उन अँधेरे लोकों के कष्टों से क्यों डरें ? यहाँ सब कोई देख

सकता है मगर वहाँ अँधेरी में कोई देख भी न पावेगा। बस बस हुआ। और दूसरे, एक प्रकार के दुःख से उकताये हुए को दूसरे प्रकार का दुख तो एक तरह का सुख ही है, क्योंकि उसमें एक तरह का नयापन भी तो है। अहाहाहाहा (शरीर को देखता हुआ) अरे पञ्चतत्वों के पुतले, जा जा ; तू अपने घर जा ; मुझ से विदा हो, मेरा पीछा छोड़। अब नहीं सहा जाता—नहीं सहा जाता।

(गाना)

खिलोने तुझे फोड़ता हूँ,
झूठा है मिट्टी का नाता, इसे तोड़ता हूँ। खिलोने०
दिन दिन भर मैं तुझसे खेला,
तेरा दुख सुख मैंने झेला,
पर अब अघा गया हूँ, तेरे हाथ जोड़ता हूँ। खिलोने०
तू मैं, मैं तूही बन बैठा,
तेरे पीछे रूठा ऐंठा,
लेकिन ये सब झूठे झगड़े आज छोड़ता हूँ। खिलोने०
बहुत दिनों का नाता टूटे,
दोनों ही का पीछा छूटे,

ममता-नगरी से अपना मुँह आज मोड़ता हूँ ।

खिलोने०

(नदी किनारे जाकर पागल ब्राह्मण मरने के लिये गले में पत्थर बाँधता है)

(प्रवेश तुलसीदास का)

तु०—(इधर उधर देखकर) अहा, कैसा रमणीक स्थान है। इधर यह कौन नहा रहा है ? अरे ! यह नहा रहा है कि गले में पत्थर बांध रहा है ? (झपटकर ब्राह्मण को पकड़ लाना)

ब्रा०—मुझे छोड़ दो, छोड़ दो, नहीं तो ठीक न होगा।

तु०—ब्राह्मण देवता, यह तुम्हें क्या सूझी है ? अपनी जान अपने आप दे रहे हो ! ऐसा करना घोर पाप है।

ब्रा०—लेकिन आतुरों के लिये नहीं, जिनका जीवन और कुछ नहीं—केवल संताप है।

तु०—आख़िर क्यों ऐसा करने पर उतारू हुए हो ?

ब्रा०—तुम मेरा दुख नहीं मेट सकते।

तु०—तो सुनकर दो आँसू तो बहा सकते हैं।

ब्रा०—उससे लाभ ?

तु०—तो जब तक तुम हमें अपना हाल न सुना दोगे तबतक हम तुम्हें न छोड़ेंगे। यों ही सही।

ब्रा०—(रोकर)

भूखे बच्चे बिललाते दिन रात हैं,
नहीं पूछते पाड़-पड़ोसी बात हैं ;

भीख नहीं मिलती है, और न काम है,
कैसे हो निर्वाह विधाता वाम है ?
रोती है ब्राह्मणी, दुःख पाती महा,
अब यह संकट अधिक नहीं जाता सहा ;
छोड़ो छोड़ो, मरने दो मुझको अभी,
मेरे मनको शान्ति मिल सकेगी तभी ।

तु०—देवता, ठहरो, इतना साहस न करो ; तुम ब्राह्मण होकर ग़रीबी से घबड़ा कर जान देते हो ! भला माया किसकी हुई है ?

ब्रा०—यह सीख बहुत भली है, पर पेट भरे पर ।

तु०—(आप ही आप) ब्राह्मण विना धनके न मानेगा । (ब्रा० से) देखो, सुखी जनों से दुखीजन भगवान् को अधिक प्यारे हैं ।

ब्रा०—हाँ सच है ; किन्तु मेरे पीछे गृहस्थी लगी है । 'भूखे भजन न होय गुपाला'—

तु०—अच्छा, तुम कितना धन चाहते हो ?

ब्रा०—जितने में हम सब सुख से जीवन बिता सकें और पड़ोसी लोग हमारी हँसी न उड़ा सकें ।

तु०—चार आने रोज़ ?

ब्रा०—हाँ, कम से कम ।

तु०—अच्छा, चार आने रोज़ हम तुम्हें देंगे पर तुम यह वादा

करो कि तुम हमारा काम ईमानदारी से करोगे।

ब्रा०—कौन काम ?

तु०—दिन रात भगवान रामचन्द्र का ध्यान करना।

ब्रा०—हाँ, करेंगे ; यह क्या कठिन है !

तु०—(हँसकर) यही तो सब से कठिन है—

'दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय,
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय।'

(पूजा की झोली मेंसे एक डिबिया खाली करके देते हुए) लो देवता, दिन भर भजन कर चुकने के बाद साँझ को इसमें से एक चवन्नी ले लिया करना। बीच में कभी इसे न खोलना, और इसका भेद भी किसी से न कहना, नहीं तो फिर कुछ न मिलेगा।

ब्रा०—(अचरज से) यह ऐसी है ?

तु०—बस जाओ।

ब्रा०—(हाथ जोड़कर) महाराज, सचमुच आप कोई बड़े भारी महात्मा हैं जो आपने ऐसे संकट में मेरी रक्षा की।

तु०—ऐसी प्रार्थना उस परमात्मा से करो जो संकट में रक्षा करता है। नर की नहीं नारायण की ही प्रार्थना में मज़ा है।

ब्रा०—बहुत अच्छा महाराज। (प्रणाम करके गया)

तु०— (गाना)

चित्रकूट अति विचित्र सुन्दर वन महि पवित्र
पावनि पय सरित सकल मल निकन्दिनी।

सानुज जहँ बसत राम लोक लोचनाभिराम
वाम अंग वामावर विश्ववन्दिनी।
चितवत मुनिगन चकोर बैठे निज ठौर ठौर
अक्षय अकलंक शरद चंद चंदिनी।
उदित सदा बन अकास मुदित बदत तुलसिदास
जय जय रघुनन्दन जय जनक नन्दिनी।

(राम लक्ष्मण का शिकारी वेश में तीर-कमान लिये उधर से निकल जाना)

तु०—ओहो, इस तपोभूमि में भी लोग शिकार खेले बिना नहीं रहते—कलियुग का ऐसा ही प्रताप है।

(हनुमानजी का प्रकट होना ; तु० का प्रणाम करना)

ह०—(हँसकर) कहो तुलसीदास, प्रभु का दर्शन हुआ ?

तु०—महाराज, दर्शन कहाँ ?

ह०—क्या अभी हाल नहीं हुआ ?

तु०—नहीं तो—

ह०—अभी यहाँ से कोई गया था ?

तु०—हाँ, दो शिकारी बालक।

ह०—वही तुम्हारे इष्टदेव राम लक्ष्मण थे। (गये)

तु०—हा, (माथे पर हाथ रखकर शोक से)

(गाना)

लोचन रहे बैरी होय,
जान बूझ अकाज कीन्हौं रहे भूमें गोय।

अवगति जु तेरी गति न जान्यों रह्यों जागत सोय,
सबै छवि की अवधि में हौ निकसिगे ढिंग होय।
करम हीन मैं पाय हीरा दियौ पल में खोय,
दास तुलसी राम बिछुरे कहो कैसी होय। लोचन०

(एक दम शोर सुनकर चौंकना और एक तरफ़ देखना) अहा, यह रामलीला के लिये राम दल निकल रहा है, ज़रा इसे ही देखकर मन को संतोष दूँ। (गये)

(प्रवेश दो आदमियों का)

एक—हाँ, क्या कहा ? उस ब्राह्मणी का पति जी उठा।

दूसरा—हाँ।

प०—किस तरह ?

दू०—वह उसकी रथी के साथ सती होने जा रही थी, रास्ते में उसे तुलसीदास नाम के साधु मिले जो हाल में काशी से आये हैं। ब्राह्मणी ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि 'सौभाग्यवती हो।' लोगों ने कहा कि महाराज यह इसके पति की रथी है; यह तो सती होने जा रही है और आप कहते हैं कि सौभाग्यवती हो ! उन्होंने अपने कमंडल में से थोड़ा सा जल उसके मुँह में डालकर, 'राम कहो' राम कहो' कहा तो वह 'राम' 'राम" कहता हुआ उठ बैठा।

प०—भला !

दू०—तो चलो ऐसे महात्मा के दर्शन करने चाहियें ।

प०—वे रहते कहाँ हैं ?

दू०—सन्त लोग कहाँ रहते हैं ? जहाँ मिल जायँ वहीं ।

(तु० का प्रवेश)

तु०—वाह, क्या अच्छी रामलीला हुई है। (दोनों से) विभीषण को राज तिलक देकर रामदल के अवध लौटने की लीला यहाँ काशी से अच्छी होती है। तुमने देखी ?

प०—(न पहचान कर) ब्राह्मण देवता, क्या आज बहुत गहरी छानी है ? भला आजकल और रामलीला !

दू०—महाराज, ज़रा होश में रहा करो।

प०—और कभी कभी साफ़ हवा भी खाया करो।

तु०—तो क्या तुम लोगों को मेरी बात का विश्वास नहीं ?

दू०—विश्वास ! हहहह ! (हँसता है)

प०—हहहह !

तु०—चलो मैं अभी दिखा दूँ ।

दोनों—चलो। (गये)

(प्रवेश हनुमानजी)

ह०—धन्य है, तुलसीदास, धन्य है। वाल्मीकि के अवतार तुझे धन्य है, जो भगवान की तेरे ऊपर इतनी दया है। अपने दर्शन के लिये ही भगवान ने तुझे वह लीला दिखलाई थी, और नहीं भला आज कल और रामलीला !

(प्रवेश तुलसी०)

तु०—(प्रणाम करके) खेद है, मैं फिर भूला। हे दयानिधान, मैंने फिर धोखा खाया। श्रीभगवान ने अपनी असीम कृपा से मुझे दर्शन दिये पर मुझ ढीठ ने उनके चरणों में गिरकर दंड प्रणाम भी न किया। हा—

ह०—भक्तशिरोमणे, पछताने की कोई बात नहीं ; कलियुग में प्रत्यक्ष रूप से प्रभु का दर्शन पाना कठिन—बल्कि असंभव है। तुम बड़े भाग्यवान हो कि तुम्हें इस तरह से दर्शन हो गया। जाओ, रघुनाथजी का सदा ध्यान रक्खो और अपनी यात्रा पूरी करो।

तु०—(अचरज के साथ प्रणाम पूर्वक) बहुत अच्छा महाराज।

(गये)

सीन ५

मथुरा में एक रास्ता

(चौबे लोग एक मारवाड़ी सेठ और उसकी सेठानी को चारों तरफ़ से घेर कर गाते हुए लाते हैं)

(गाना—रसिया)

अरी वो माखन खातौ डोलै, जसोदा तेरौ लाला।
चोर चोर वाने माखन खायौ,
मटुकी फोरी तउ न अघायौ,

अररररर वो तो बैन तोतरे बोलै जसोदा तेरौ लाला।
पूँछ खैंच वाने बछिया खोली,
बरजत हैं तौ करै ठठोली,
अररररर वो तो मठा में माटी घोलै, जसोदा तेरौ०

सेठ—अरै मनें छोड़ो बाबा छोड़ो, क्यों मनें खोटी करौ छौ?

एक चौबे—सेठ जी पाँच भाईन कौं भूल मति जैयौं।

दूसरा—तेरौ सिग काम सुधरि जायगौ, आज हमन कूँ इच्छा-भोजन कराय दै।

तीसरा—और का जिजमान, खीर-पूरी और छकाछक लड्डुआ खवाय दै। तेरी जै होय जमना मैया।

चौथा—(आकर) अरे सेठ, जे कहा अनीति करै है? तू तौ हमारौ जिजमान है, तोहि इन सारेन तैं कहा मतलबु?

सेठ—आछो धरम के ताईं आयो। बेटी का बाप, ठाकुरजी का तौ दरसन करवा ही कोने दे, आप ही आपकी राग अलापै छै।

पहला—सेठानी कछु पुन्न करौ पुन्न। जे कहा बात है? हमहुँ तीरथवासी ब्राह्मन हैं, तुमारी आस मनामें हैं। जै होय तुमारी।

(चौबे लोग सेठ को पकड़ कर इधर उधर खींचते और जमना मैया की जय बोलते हैं)

सेठ—अरे कम्बखतो मरो! बुरी गारो मरो! सेठाणीजी बचाजो बचाजो।

चौबे—अजी माल निकारौ माल; माल निकासे बिना काम नायँ चलै।

(कुछ और चौबे आये)

नये चौबे—(सेठ की तरफ़ इशारा करके) जे हमारौ जिजमान है, तुमारौ मूड़ फोड़ि दैयँगे।

पहला—अबे ज़ाऔ, दारी केनै ठीक करि देउँगौ। बड़े मूड़ फोड़िबे वारे आये हैं खक्खासाह।

नये—अबे तौ उल्लू के पट्ठा सारे, हमारे जिजमानै चौं छेड़ रह्यौ है?

पहले—कबहुँ तेरे बाप कौहू जिजमान भयौ है—(दोनों दल हाथा-बाहीं करने पर उतारू होते हैं; सेठजी मुफ़्त में दोनों तरफ़ से धप्प खाते हैं; लड़ते हुए सब जाते हैं।

(प्रवेश तुलसीदास और लूटमाल सिंह का)

तु०—तो फिर आख़िर कुछ कहो भी तो। इस घबड़ाहट का कारण क्या है जो मेरी तलाश में यहाँ तक दौड़े आये हो?

राजा—महाराज, कहने ही के लिये आया हूँ। पर क्या कहूँ, कहने में भी लज्जा आती है।

तुलसी०—यहाँ लज्जा का काम नहीं—

जो बात छिपाये भी न छिपे उसमें लज्जा का काम नहीं,
यह धाम राम का है प्यारे, इसमें दुबिधा का नाम नहीं,
सब सोच छोड़कर कह डालो जो कुछ भी तुमको कहना है,
राजाका--माला मुकुट नहीं—बस सच कहना ही गहना है।

है दुःख कौनसा ऐसा जिसका दुनिया में प्रतिकार नहीं,
है बीमारी वह कौन कि जिसकी दवा और उपचार नहीं,
सबके ऊपर है कर्म-बनाई बुरी भली जैसी रेखा,
बस उसके ही अनुसार काम सब हमने तो होता देखा ;
जो मेट सके उन रेखाओं को ऐसा कोई वीर नहीं,
जो बाँध हवा को सके कहीं ऐसी कोई ज़ंजीर नहीं।

राजा—(हाथ जोड़कर)

हैं आप लोग गुरुजन ही जो अनहोनी बातें करते हैं,
पाते हैं कष्ट अनेक किन्तु दुख दीन जनों का हरते हैं ;
रेखायें जो हों पड़ी भाल में बदल उन्हें भी सकते हैं,
जिनकी सुदृष्टि से सूखे डूँठों में मीठे फल पकते हैं ;
पत्थर भी पानी देते हैं, हो जाती है अग्नी शीतल,
मन घोर नारकी दुष्टों के हो जाते निर्मल गङ्गाजल।

तु०—अच्छा तो फिर बात क्या है, कुछ कहो भी।

राजा—मेरा जो कुमार है—

तुलसी०—हाँ—

राजा—वह असल में कुमार नहीं कुमारी है।

तु०—अच्छा !

राजा—महाराज, रानी की मूर्खता से ही यह आफ़त आई है।

तु०—कौन सी आफ़त ?

राजा—अंधेर नगरी का राजा चापड़तल्लाम सिंह जो किसी दिन हमारा बड़ा भारी मित्र था अब दोही चार दिन में हमारी

गरदन काटेगा।

तु०—कैसे ?

राजा—पहले एक दफ़े मैं और वह, दोनों, शिकार खेलने गये थे। वहाँ हमने एक हिरन के बच्चे को छोटी सी हिरनी के साथ खेलते देखा। हमको दया आई और उन पर तीर न चलाया। उसी समय मेरा और राजा चापड़-तल्लाम का यह ठहराव हुआ कि अबकी बार अगर हम लोगों में से किसी एक के यहाँ लड़का और दूसरे के यहाँ लड़की होगी तो उनका आपस में ब्याह कर दिया जायगा। इत्तफ़ाक़ से मेरे यहाँ लड़की हुई, पर उसी ठहराव को याद करके रानी ने इस बात को बड़ी होशियारी से छिपाया, और ज़ाहिर किया कि मेरे यहाँ तो लड़का हुआ है। यह बात अभी तक छिपाई गई और मुझे भी अभी मालूम पड़ी है।

तु०—भला !

राजा—उधर चापड़तल्लामसिंह के यहाँ भी लड़की हुई, और अब वह कुछ बड़ी हुई तभी से उन्होंने उस ठहराव के मुताबिक ब्याह करने के लिये बार बार कहलाकर भेजा, पर रानी किसी न किसी बहाने से टालती रही। अब उस राजा ने हमें चिट्ठी भेजी है कि मालूम होता है तुम्हारा कुँवर असल में लड़की है, सो या तो तुम इसका ठीक ठीक जवाब दो और या लड़ाई के लिये तैयार हो।

(पैर छूकर) महाराज, मेरी बड़ी बदनामी उड़ रही है, और रही सही और भी उड़नेवाली है। उसी से डरकर मैं आपकी शरण आया हूँ कि या तो आप कोई उपाय बतलाइये जिससे इस संकट से हमारा छुटकारा हो और नहीं तो मैं अभी जमना जी में डूबकर अपने प्राण देता हूँ। क्योंकि—

इज्ज़त खोकर जीने से है लाख बार अच्छा मर जाना,
सह न सकेंगे हरगिज़ भी हम—सब दुनिया देती है ताना।

तु०—तो ऐसी ग़लती रानी ने क्यों की ?

राजा—महाराज, सिवा मूर्खता के और क्या कहा जाय ? (पैरों में लोटकर) अब तो किसी तरह हमारी रक्षा कीजिये।

तु०—अच्छा ख़ैर, रघुनाथजी सब भला करेंगे। (अपने कमंडल में से जल लेकर एक शीशी में देते हुए). तुम ऐसा करना— (कान में कुछ कहते हुए) बस श्रीरघुनाथजी महाराज की कृपा से सब ठीक हो जायगा। तुम कुछ फ़िक्र न करो, जाओ। (दोनों जाते हैं)

सीन ६

गोपाल मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति

(कितने ही लोग दर्शन कर रहे हैं ; एक तरफ तुलसीदास, और परस राम ब्राह्मण बातें करते हुए आते हैं)

तु०—(प० से) मेरी तो यही राय है कि राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं ; उनमें भेद मानना भूल है और हठधर्मी है ?

प०—यह भी तुमने ख़ूब कही। भेद नहीं तो दो अवतार क्यों मानते हो ? एक ही जो मानो।

तु०—आकाश तो आकाश ही है, चाहे घट में हो चाहे मठ में।

प०—और जल भी जल ही है, चाहे जमनाजल हो चाहे गङ्गा-जल। फिर गङ्गाजल की जो इतनी महिमा गाई गई है सो सब यों ही ?

तु०—तरह तरह के कपड़े पहिनने से जैसे मनुष्य का शरीर कुछ बदल नहीं जाता, उसी तरह से कई अवतार लेने पर भी ब्रह्म के ब्रह्मत्व में द्वित्व नहीं आता।

प०—तुम भी ख़ूब मतलब के लिये कभी द्वैतवादी बन जाते हो कभी अद्वैतवादी। अगर तुममें और तुम्हारे इष्टदेव रघुनाथजी में शक्ति है तो प्रत्यक्ष दिखलाओ कि राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं। तुम राम के उपासक हो और नामी साधु हो। तुम्हारा यश चारों ओर फैल रहा है। भला सोचो तो कि अगर राम और कृष्ण में भेद नहीं, तो

फिर किसी भी देवता में एक दूसरे से भेद नहीं, फिर देवताओं को तेतीस करोड़ मानना भी मूर्खता है, एक ही परमेश्वर की उपासना होनी चाहिये ?

तु०—अच्छा आइये दर्शन तो करें, ये बातें फिर होती रहेंगी।

प०—तो मेरी शंका का अभी समाधान नहीं हुआ।

तु०—होजायगा, देवता, होजायगा।

(दोनों मूर्त्ति की ओर बढ़ते हैं)

प०—

अपने अपने इष्ट कों, नमन करें सब कोय।
परसराम बिनु इष्ट के, नवै सो मूरख होय॥

तु०—आपने सच कहा कि 'अपने अपने इष्टकों नमन करें सब कोय'—वाह

कहा कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ,
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बान लो हाथ।

(यकायक कृष्णकी मूर्त्तिका रामकी मूर्त्ति में बदल जाना; सबका अचरज करना)

तु०—(मूर्त्तिको दंडवत करके प०—से)

क्रीट मुकुट माथे धर्‌यो, धनुष बान लिय हाथ,
तुलसी निज जन कारने, नाथ भये रघुनाथ।

प०—(पैरोंपर गिरकर) क्षमा करो, क्षमा करो, हे महात्मा, मैंने तुम्हें न पहचानकर जो तुम्हारे साथ ढीठता की उसके लिये क्षमा करो।

तु०—(उठाकर और छाती से लगाकर) देवता, क्यों दुखी होते हो ? जो घट घट में एक ही रूपसे रम रहा है वही राम है और वही कृष्ण। उसीकी प्रार्थना करो और उसीसे क्षमा माँगो।

(गाना)

ऐसी कौन प्रभुकी रीति,
बिरद हेत पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति।
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाय,
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादौराय।
काम मोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन्ह,
जगत पिता बिरंचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह।
नेमते सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि,
कियो लीन सो आपमें हरि राज सभा मँझारि।
व्याध चित दै चरन मार्यो मूढ़मति मृग जानि,
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि।
कौन तिन्हकी कहै जिनके सुकृत अरु अघ दोउ,
प्रगट पातक रूप तुलसी सरन राख्यौ सोउ॥

(परदा गिरता है)

सीन ७

आगरे के किले के भीतर का एक हिस्सा—रास्ता

मस्तान शाह फ़कीर—

(गाना)

मन शमअ़ जाँ गुदाज़म् तू सुबह दिल कुशाई,
मीरम् गरत् न बीनी सोज़म् चु रुख़ नुमाई
नज़दीक तो चुनींअम् दूर आँ चुनाँ कि गोयम्,
न ताबे वस्ल दारम् न ताक़ते जुदाई ॥

(प्रवेश दो गुलामों—हसन और आबिद्-का)

हसन—लेकिन यार, है बात बड़े ताज्जुबकी—ग़ैर मामूली ताक़त !

आबिद—ताज्जुबकी कुछ नहीं, अल्लाह तआलाने फ़कीरोंको ग़ैर मामूली ताक़त के ख़ज़ाने की चाभी सौंप रक्खी है, क्योंकि अगर हर किसी इनसानको ये ताक़तें हासिल होजायें तो फिर ज़ुल्मकी कुछ हद न रहे ; और फ़कीरोंको किसी बात की ख़्वाहिश नहीं रहती, न उनका कोई दोस्त होता है न दुश्मन, इस लिये वे किसी का नुक़सान करना कभी नहीं चाहते, हाँ फ़ायदा ज़रूर कर देते हैं। अल्लाह के बंदों में फ़कीरों से ऊँचा किसीका भी दर्जा नहीं। उन्हें छेड़ना बड़ी

भूल है। और फिर न जाने कौन किस सूरतमें फिरता है? किसी को तंग करने से मतलब क्या? पर हाँ वह पूरी बात तो बतला—

हसन—बात यह हुई कि वही 'गजराज' नाम का मस्त हाथी आज फिर फ़ील ख़ाने में से छूट गया और लगा इधर उधर लोगों को कुचल कुचल कर मारने। सब लोग अपने अपने दरवाज़ोंको बंद करके भीतर बैठे, पर उसने कई हवेलियोंके दरवाज़े तोड़ डाले और नुकसान किया। बाज़ारों में एक सन्नाटे का आलम छागया। इतने में वही हिन्दू फ़कीर जो जमना किनारे आपड़ा है ख़ान-ख़ाना की ड्योढ़ी की तरफ़ जाने लगा। लोगों ने रोका भी पर वह न माना और कहने लगा कि अगर आज इस हाथी के ही हाथों मेरी मौत बदी है तो फिर रोक भी कौन सकता है। पस वह आगे बढ़ा और उधर से गजराज आही रहा था, उसने उसे घेरा, पर इतने ही में न जाने कहाँ से आकर एक तीर उस हाथी की पेशानी में लगा जिस से वह चीख़ मार कर गिर गया और मर गया।

आबिद—ख़ूब! और वहाँ तीर चलानेवाला भी कोई न था? (एक तरफ़ देख कर) देखो उधर से कौन कौन आ रहे हैं। आओ, इधर छिपें।

म०—हम तो नहीं छिपते।

ह०—बाबा तेरी हर तरह की छूट है, तू जो चाहे वह कर।

(एक तरफ़ छिपते हैं)

म०—न ताबे वस्ल दारम् न ताक़ते जुदाई।

(खानखाना, बीरबल और मानसिंह के साथ तुलसीदास का प्रवेश)

मान०—महाराज के दर्शन करके हमारे शहंशाह का जनम सुफल हो जायगा।

खान०—आपने बड़ी किरपा की जो हमारी इल्तिजा क़बूल की। जब से बादशाह सलामत ने विंध्य के राजा से आपकी तारीफ़ और वह मुर्दा जिलाने वाली बात सुनी है, तब से आपके दर्शनों को बेचैन रहते हैं, और आये दिन मुझ से ज़िक्र किया करते हैं।

बीर०—(रास्ता दिखाता हुआ) महाराज इधर से पधारिये। (गये)

म०—वाह, क्या साधू है! ख़ुशक़िस्मती इस क़िले की जो इस में इस के क़दम आये।

(हसन और आबिद का प्रवेश)

हसन—भाई क़सम ख़ुदाकी—यही है वह।

आबिद—वाह, क्या मोहनी मूरत है और भोली सूरत है!—

हैं दुनिया भर के प्यारे ये,
व दुनिया इनकी प्यारी है,
है सब का क़ब्ज़ा इन पै,
क़ब्ज़ा सब पर इनका जारी है;

जहाँ है हुक्म अल्लह का
वहाँ इनकी भी तूती है,
जहाँ की न्यामतें सब इनकी
धूनीकी बिभूती है ;
भला मजहब की दीवारों से
ये कब बंद रहते हैं,
हमेशा प्रेम की गंगा में
प्यारे फूल बहते हैं।

ज़रा इस फ़क़ीर के चहरे की रौनक़ तो देखो—

हसन—मालूम होता है जैसे कोई अपना दिल इसीके साथ खिंचा चला गया हो। या अल्लाह! मैं यही सोच रहा हूँ कि बादशाह बड़ा या फ़क़ीर—

एक का क़ाबू है मन पर, दूसरे का तन पै है,
एक का जिन्नत पै है तो दूसरे का धन पै है,
दूर होती दुनियवी तकलीफ़ मिलकर शाह से,
हाल क्या होवे मिलें गर बन्दये अल्लाह से ?

म०—सच है।

आ०—हसन तूने सच कहा मगर (एक तरफ़ देखकर अचरज से) यह क्या ? अभी अभी क्या होगया जो महाराज

मानसिंह इस तरह नाराज़ होकर दरबार से चले आते हैं ?

ह०—(देख कर) हाँ, और उनके पीछे पीछे खानखाना भी तो कुछ कहते आते हैं, जैसे कोई रूठे आदमी को समझाते या मनाते हैं। आओ इधर छिप कर सुनें। (छिपते हैं)

मान०—(आ कर) यह कोई आज ही की बात नहीं, रोज़ की बात है, कोई कहाँ तक सहे।

खान०—बड़े शर्म की बात है।

मान०—रोज़ ही देखते हैं कि जिनको हम अपना पूज्य समझते हैं उन्हीं की तौहीन भरे दरबार में की जाती है।

खान०—महाराज, धीरज रखिये।

मान०—कोई कहाँ तक धीरज धरे ? धीरज की भी तो कुछ हद होती है !

म०— अ ह ह ह ह ह ! धीरज की हद कहाँ होती है ? धीरज की हद नहीं होती है।

खान०—इस एक बात को छोड़ कर बादशाह की और खूबियों की तरफ़ गौर कीजिये और इस बादशाहत की तरफ़ देखिये जो आपही की बदौलत चल रही है।

मान०—उसका इनाम भी तो खूब मिल रहा है। भला सोचिये कि हम तो क्या हमारे चाचा तक जिसको अपना गुरु मानते हैं और जिसके दर्शनों के लिये खुद बादशाह ने बीस बार हमसे कहा, वही जब हमारे

बड़े भाग्य से आया तो उसी बादशाह ने उसे हवालात में बंद करा दिया ! और फिर कोई कुसूर भी तो हो ?

ख़ान०—आप और आपके चचा ही क्यों, लाखों आदमी और उन सब का ख़ादिम मैं भी उनको अपना गुरु मानता हूँ, बल्कि जगत् का गुरु मानता हूँ। यह सलूक किसे अच्छा लगेगा ?

मान०—किसी को अच्छा लगे या न लगे, इस बात की वहाँ परवा किसे है ? हरेक बात में अपने मन की मौज चलती है। और बादशाह की यह ज़िद कि जब तक चमत्कार न दिखलावेंगे हवालत में बंद रक्खूँगा कतई ठीक नहीं—क्योंकि चमत्कार देखने के लिये बड़ी क़िस्मत चाहिये। बादशाहने समझ क्या रक्खा है ? अगर आज शाम तक गोस्वामी जी महाराज को हवालत में से न छुड़ालूँ तो मेरा भी नाम मानसिंह नहीं और (मूछों पर ताव देता हुआ) मैं असली राजपूत की औलाद नहीं। (गुस्से से इधर उधर फिरता है)

म०—अ ह ह ह ह ह ! शेर पिंजड़े के बाहर चला ! सँभालो ! सँभालो !

ख़ान०—महाराज, धीरज से काम लीजिये ; मालिक की ग़लती को नरमाई से सुधारिये ; जो गांठ पड़ गई हो तो उसे सुलझाना ही अक़्लमंदों का काम है, न कि डोरी को

ही काट कर फेंक देना। आप तो शाम तक की कहते हैं, मैं कहता हूँ गोस्वामी जी महाराज अभी आते हैं अभी। सच्चे फ़क़ीर के दिल को दुखाने की सज़ा से कोई भी नहीं बच सकता—

म०—अ ह ह ह ह ह!

ख़ान०—चाहे वह राजा हो या रय्यत। क्या गोस्वामी जी महाराज के सच्चे फ़क़ीर होने में आप को कुछ शक है?

मान०—हरगिज़ नहीं; कुछ भी नहीं।

ख़ान०—तो यक़ीन मानिये कि बादशाह का शक दूर होने में अब देर नहीं। (बड़े हल्ले गुल्ले की आवाज़ का सुनाई देना और बहुत से आदमियों का इधर से उधर 'बचाओ, बचाओ' कहतेहुए भागना; मानसिंह और ख़ानख़ाना का अचरज करना)

मान०—यह क्या?

म०—अब पड़े लाले! अ ह ह ह ह ह!

ख़ान०—मैं आपसे अभी कहता न था कि कुछ न कुछ गड़बड़ ज़रूर मचेगी।

(लोगों का फिर उसी तरह भागना, रोने चीख़ने की आवाज़)

मान०—(एक आदमी को पकड़ कर) यह क्या गड़बड़ है? ठहर जा—

आदमी—(हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक) महाराज मेरा कुछ क़सूर नहीं है; क़िले और महलों पर बंदर बंदर ही न जाने

कहाँ से आ टूटे हैं और तमाम महलों को तबाह कर रक्खा है। अभी अभी आगये हैं। न किसीने आते देखा है न जाते। बेगमें घबड़ा रही हैं; पछाड़ खा खा कर गिर रही हैं।

म०—अ ह ह ह ह ह!

ख़ान०—(मान० से) महाराज, आप यहीं ठहरिये, गोस्वामी जी को हनुमान जी का इष्ट है। उन्हें हवालात में बंद करने का ही यह नतीजा मिला है। मैं अभी बादशाह को समझाता हूँ। (गया)

आदमी—कई बाँदियों को ऊपर से ढकेल दिया, कई का मुँह नोच लिया।

मान०—(ख़ुश होकर) ख़ूब हुआ—अच्छा जा (आदमी गया; आपही आप) लो और करो साधु पर ज़ुल्म! जिन सच्चे साधुओं के घड़ी भर ठहरने से ही नरक जैसी बुरी जगह भी स्वर्ग को मात करने लगती है उनकी जाँच करने का यह नतीजा! ख़ूब हुआ! अब देख गया चमत्कार। (इधर उधर देख कर) ऐं? यह सन्नाटा कैसा? गुल गपाड़ा दूर होगया—सब आँधी तूफ़ान काफ़ूर होगया!

(प्रवेश बादशाह का खानखाना, बीरबल, आदि कई मुसाहिबों के साथ; सब हाथ जोड़े हुए)

बाद०—ऐ फ़कीर, ऐ ख़ुदा-तरस साधू, मेरे गुनाह मुआफ़ कर, मुझ से भूल हुई जो मैं ने तेरा इम्तिहान किया।

म०—अ ह ह ह ह ! अब आँखें खुलीं !

तु०—कुछ परवा नहीं, अब तुम मुझे जाने दो।

बाद०—तू मेरी सल्तनत में चाहे जहाँ कुटी बनाले और जितनी ज़मीन चाहे लेले, मन्दिर बनवाले, जितना चाहे रुपया लेले। भाई मानसिंह, चचा जगतसिंह, बीरबल और ख़ानख़ाना सभी तेरे मुरीद हैं—आज से मुझे भी अपना ख़ादिम क़ुबूल कर। तू सचमुच पहुंचा हुआ है।

म०—अ ह ह ह ह, चेते चेते—

तु०—तुम्हीं मुझे माफ़ करो। तुम बड़े भाग्यवान हो, देखो, अभी तो श्रीरघुनाथ जी की वानरी सेना ही आई थी, इसके बाद वे ख़ुद पधारते।

म०—अ ह ह ह, क्यों नहीं।

बा०—बस मैंने समझ लिया, और तेरे दरशन से अपनी ज़िन्दगी सुफल करली; अब मेरे लायक़ कोई ख़िदमत भी बतला।

तु०—बस मेरा तो यही कहना है कि—

काम से रूप प्रताप दिनेस से
सोम से सील गनेस से माने,
हरिचंद से साँच बड़े बिधि से
मघवा से महीप बिषै सुख साने,
सुकसे मुनि सारद से बकता,
चिर जीवन लोमस ते अधिकाने,

ऐसे भये तो कहा तुलसी
जो पै राजिव लोचन राम न जाने।

(गये ; सब पीछे पीछे गये)

म०—'न ताबे वस्ल दारम् न ताक़ते जुदाई'

(गाता हुआ जाता है)

सीन ८

ससुराल का मकान।

(रत्नावली पूजा के लिये फूलों की माला गूँथ रही है और गा रही है)

(गाना)

आँसुओ बरसो मूसलधार,
खुले तुम्हारे हेत पड़े हैं नैनों के दो द्वार।
आये थे तुम किसे खोजते अब क्यों चले बिसार,
या मन माने फिरते हो तुम इधर उधर बेकार?
या कि विरह की आग बुझाते, करते हो उपकार
बोलो कितना बहा ले चले मेरे दुख का भार?
अच्छा हो यदि धोडालो वह चित्र एक ही बार,
जिसे देखकर यह चंचल मन
सुधिबुधि रहा बिसार।

(प्रवेश चन्द्रा)

चं०—बहिन रत्नावली, आज कल तो बड़ी पूजा अर्चा में लगी रहो हो। कहो तो, क्या किसी खोये हुए धन पर मोहन या बसीकरन करो हो ?

र०—बहिन, क्यों हँसी करो हो ? मेरी तो आज बरसों से पूजा अर्चा भी भगवान को रुचै नहीं है। बंजर में बीज जैसा डाला जैसा न डाला, सो हाल अभागे की पूजा का है ; कुछ भी फल नहीं मिलै है। हाँ यों कहो कि बैठे बैठे मन नहीं लगै है सो इसी बहाने अपना दिन काटूँ हूँ।

चं०—अजी किसी दिन इकट्ठा ही फल ले लेना। तुम्हारी इस पूजा से भगवान का आसन ऐसा डोलेगा.जैसा पार्वती की पूजा से महादेव जी का डोला था।

र०—बहिन, तुम जो कहो सो थोड़ा ; भगवान ने तुम्हें सब कुछ दिया है ; मुझ गरीबनी का कौन है। (आँचल से मुँह ढक कर रोती है)

चं०—(उसका आँचल हटाती हुई) बहिन, तनिक सी बात पर अब तुम इतना दुख क्यों करने लगी हो ; इतनी तो तब भी नहीं चिढ़ो थी जब तुम्हारी उमर इस से आधी थी।

र०—(ठंडी साँस लेकर)

उस समय सब था,

न अब कुछ भी रहा बाक़ी यहाँ.

बुद्धि, बल, धीरज सभी ये
चल दिये जाने कहाँ,
रह गया तन—जोकि बिलकुल
सूखकर झाँझर हुआ,
और मन ? सो प्रेम-धन
लुटवा चुका पट पर हुआ ।

चं०—(सहानुभूति के साथ) हाँ बहिन सच है—

बागका जंगल हुआ गति है निराली काल की,
है तुम्हारी वह दशा होगी न जो कंगाल की ;
आपड़ा ग्रह कौन सा जिसने कि ऐसी चालकी,
लाख करती हो जतन, मिटती न रेखा भाल की ।

(एक छोटे बच्चे का आकर चंद्रा से लिपट जाना)

बच्चा—अम्मा एक पैसा—

चंद्रा—बेटा क्या करेगा—

बेर, गँडेली, खुरमे, लड्डू सब
कुछ घर में रक्खे हैं,
पेड़े बरफी, मालपुए भी
अभी हाल ही चक्खे हैं,

कलही तो मेले से तू छःसात
खिलौने लाया है,
दो अमरूद अनार उड़ाये
तो भी नहीं अघाया है ;
बिना बात खो आने को,
क्यों है पैसे के लिये अड़ा ?
अरे हठीले, तूने मुझको
कर रक्खा है तंग बड़ा।

बच्चा—अम्मा मैं खोने को नहीं—एक बाबाजी को दूँगा।

चंद्रा—कौन बाबाजी ? कैसा बाबाजी ? तुझे झोली में धर के ले जायगा। बड़ा कहीं का बाबाजी !

बच्चा—अम्मा, वो अभी हाल जमना किनारे नाव पर से उतरा था। जब ठेकेदार ने डंड माँगा तो उसने अपना हजारों रुपयों का सामान गरीबों को लुटा दिया। अब भीख माँग रहा है। उसी को मैं पैसा दूँगा।

चंद्रा—(झिड़क कर) अच्छा अच्छा, दीजो।

(प्रवेश तुलसी दास का)

तु०—सीताराम, कुछ भिक्षा मिले माता !

बच्चा—अम्मा, यही है वह !

चं०—भला, भला।

र०—महाराज, भिक्षा तो मुझ गरीबनी के यहाँ इस वखत कुछ है नहीं, थोड़ा सा गुड़ धरा है सो ले लो—पानीवानी पी लो।

तु०—(चौंक कर) हैं! यह आवाज़ तो पहचान की मालूम होती है! किसकी है? (सोचते हुए ब्राह्मणी से) माता—

नहीं चाहिये है हमें बढ़िया भोजन पान,
भूखे हैं हरि-प्रेम के, सत्य वचन यह जान।

चं०—(कुछ शक के साथ) क्यों महाराज, आप कहाँ से आ रहे हैं?

तु०—माई, मैं इधर वृन्दावन, मथुरा, गोकुल होता चला आ रहा हूँ।

चं०—महाराज, आपका रहना कहाँ होता है?

(रत्ना० थोड़ा सा गुड़ और गिलास में पानी लाती है)

तु०—धन्य है माता, रामजी तेरा भला करे। तेरे इस उपकार के बदल में देने को हमारे पास क्या धरा है?

कंठी माला पास है और नहीं कुछ पास,

र०—(गौर से देख कर, कुछ शक करके छाती पर हाथ रख कर, आप ही आप)—

रे चंचल मन धैर्य रख, कर न वृथा की आस।

चं०—हाँ तो महाराज, आपने अपने रहने की जगह न बताई।

तु०—अब हम अधिकतर अस्सी पर काशी जी में ही रहते हैं; थोड़े दिनों के लिये कभी राजापुर और कभी चित्रकूट में भी जा रहते हैं।

चं०—(पहचान कर रत्नावली की तरफ़ इशारा करती हुई) तो क्यों महाराज, आपकी जनम भूम कहाँ है, और आपका ब्याह हुआ है कि नहीं ?

र०—(आप ही आप) हाँ, अब भेद खुल जायगा।

तु०—भला माइयो, इन सब बातों से तुम्हें क्या मतलब ?

र०—(आप ही आप) अब कुछ भी शक नहीं रहा, क्यों कि स्वामी के गले का वह तिल अब और साफ़ दीख रहा है।

चं—हमें कुछ मतलब है, आप कृपा करके बताओ तो ?

तु०—यह कौन सा गाँव है ? मैं यहाँ रास्ते से भटक कर चला आया हूँ क्यों कि बाढ़ के कारण नाव आगे न जा सकी। बताओ काशी को किधर से जाना होता है ?

र०—(आप ही आप) हाय, क्या फिर मुझे छोड़ जाओगे ?

चं०—पैदल मत जाओ, बड़ी दूर है, दो तीन दिन में नदी उतर जाय तब जाना। यह भी तुम्हारा ही घर है।

तु०—यह कौन सा गाँव है ?

चं०—तुम अपनी जनम भूम का नाम बताओ तो हम तुम्हें गाँव का नाम बतावें—

तु०—माता, ऐसे ऐसे न जाने कितने गाँव रोज़ रास्ते में पड़ते

हैं। पूछना होगा तो हम किसी और से पूछलेंगे, न बताओ—(जाने लगते हैं)

र०—(आप ही आप) तो क्या करूँ, मैं ही बोलूँ ?

वं०—बहन रत्नावली, जब तक नहीं पहचाना था तब तक तो बोलती थी, अब क्यों चुपकी हो गई ?

तु०—हैं ! यह तुम क्या कहती हो ? किस से कहती हो ?

र०—(पैरों में गिर कर) हे नाथ ! (रोती है)

तु०—(हट कर) कौन हो तुम ?

र०—तुम्हारी दासी—

तु०—कौन दासी ?

र०—रत्नावली।

तु०—(चौंक कर) हैं ! कौन रत्नावली ?

वं०—वही जिस के पीछे आप रात में नदी पार करके—

तु०—(ध्यान से देख कर और पहचान कर) अरे ! लेकिन अब तू मेरी पत्नी नहीं, माता है—गुरु है।

वं०—महाराज गुसाईं जी, अब यहीं विराजो, इस बेचारी की जान बचाओ।

(रत्नावली तुलसी० के चहरे की तरफ आशा और निराशा की निगाह से देखती है)

तु०—मैं अब अपने साथ किसी को रख नहीं सकता—शास्त्रों की ऐसी ही आज्ञा है। दूसरे, जिस घड़ी से (रत्नावली की ओर) इस सती ने मुझे ज्ञान का उपदेश किया उसी

घड़ी से मेरा और इसका वह संबन्ध टूट गया। जो फूल एक बार डाल से टूट चुका वह अब फिर कैसे जुड़ सकता है ?

चं०—तुम बड़े कठोर हो ; तुम्हारा कलेजा पत्थर है ; तुम झूठे भी हो जो कहो हो कि मैं अब कोई चीज अपने साथ नहीं रक्खूँ हूँ ।

र०—(चं० से)

ज़रा यह देख तो झोला कि इस में क्या नहीं रखते,
खटाई और मिर्चा तक हैं रखते या नहीं रखते ;
धरा सामान पूजाका, न जाने और क्या क्या है,
बड़ा अचरज है कहते हैं कि हम
कुछ भी नहीं रखते !

चं०—ठीक तो है, महाराज इसे भी साथ ले जाओ, तुम्हारी सेवा करेगी और राम भजन में लगी रहेगी।

तु०—(झोला पटक कर) हे माता, यह तेरा दूसरा उपदेश हुआ और यह भी मेरे सिर माथे। जो भजन मेरे साथ रह कर हो सकता है वह यहाँ भी हो सकता है, फिर वृथा मोह का बीज अपने हृदय के खेत में क्यों जमाती है, और नष्ट होनेवाले संसारी प्रेम के जल से उसे सींच कर क्यों बढ़ाती है ? अस्तु, मुझे अब जाने दो, और तुम यहीं श्रीरघुनाथ जी महाराज के भजन में लगी रहो। मैं

तुम्हें साथ ले चलूँ तो गुरु का वचन न मानने का दोषी हूँगा और मेरी सब पूजा-अर्चा, जो तुम्हारे ही उपदेश का फल है व्यर्थ जायगी, इस लिये हे माता, लाचारी है।

चं०—आप न मानेंगे?

तु०—लाचारी है।

चं०—(आँसू पोंछती हुई) तो इसे असीस तो देते जाओ।

तु०—(रत्नावली से) हे पतिव्रता ब्राह्मणी, तू शरीरके और मन के झूठे दुःखों की परवा न करके और श्रीरघुनाथ जी महाराज के चरण कमलों की सेवा करके मुक्ति लाभ करे।

(जाते हैं ; र० बेहोश हो जाती है ; चं० उसे सँभालती है)



तीसरा अंक

सीन १

गुसाईं पियूलालजी की बैठक।

पियूलाल जी शराबके नशे में चूर गद्दी-तकिया लगाये बैठे हैं; आस पास दोस्त लोग इकट्ठे हैं; दो रंडियां नाच रही हैं—वाह वाह होरही है।

(गाना कजली की धुन पर)

तुम आँख-मिचौनी खेल खेलते
किधर जा छिपे लाल।
देखो तो बिना तुम्हारे राधा हुई
हाय कंगाल। तुम०

है धड़क रहा दिल और पड़ी
है ठंडी मोती माल,
रोरो कर बिखरे जाते हैं देखो
निराश ये बाल। तुम०

(अपनी आँखों को बतलाती हुई)

बतलाते थे तुम जिन्हें कमल
वे बने जा रहे ताल,

है ठीक नहीं यों रोज़ रोज़ चलना
बेढंगी चाल । तुम०
हाँ मानी मैंने हार, तुम्हीं
जीते, होगये निहाल,
हे जीवनधन, अब दरसन देकर
मेरी करो सँभाल । तुम०

पियूलाल—(नशे में) वाह वाह क्या कहना है ! अरे कोई है ? लिखदो इनके नाम आधी काशी, अगर वह मेरी हो तो । लिखदो लिखदो—हाँ······लिखदो, लि··· ख···दो ।

बाहर से 'महाराज बड़ा अन्याय हो रहा है, ब्राह्मणों की लज्जा बचाइये' यह आवाज़ आती है)

पियू०—अरे कौन है यह बाहर ? हाँ—कौन है ? कौन है ?

फिर वही बात कहते हुए दो ब्राह्मण आते हैं)

ब्राह्मण—महाराज, आप काशी में हिन्दुओं के एक स्तम्भ हैं, इस समय घोर धर्म-संकट उपस्थित हुआ है, लज्जा बचाइये ।

पियू०—लज्जा ? क्या ? क्या हुआ है ? ज़रा लाना तो मेरे घुँघरू । (घुँघरू बाँधते हुए) मैं अभी भड़ुओं को अपने ठुमके के मारे ठीक किये देती हूँ । (घुँघरू बाँध कर अपनी आधी धोती औरतों की तरह ओढ़ कर)

बजाओ, बजाओ कहरवे का ठेका। (नाच का बाजा बजता है, पियूलाल जी नाचते नाचते सम पर ज़ोर से पैर मार कर बोले) अभी मुआ अन्याय दूर हुआ कि नहीं? कहो तो? नहीं हुआ? अच्छा मुए! (साज वालों से) करदो दून में। (नाच कर) अब भी दूर हुआ? नहीं! (साज वालों से) अच्छा और बढ़ाओ। इस भड़ुवे को मैं भी आज रहने न दूँगी। अपे पैरों तले कुचल मुए का कचूमर निकाल दूँगी। (और नाचते हैं; आखिर थक कर बैठ जाते हैं)

ब्राह्मण—महाराज, धर्म-संकट उपस्थित है, रक्षा कीजिये, बचाइये।

पियू०—अरे तो क्या……है।

ब्राह्मण—(सब लोगों से) तुलसीदास नामका साधु-वेष-धारी धूर्त जिसने पहले एक भंगी को गले से लगाया था, और हत्यारे को अपने कमंडल से पानी पिलाया था और उसे अपने साथ बैठा कर श्रीरामचन्द्र जी का प्रसाद खिलाया था फिर काशी में आगया है। पहले इस बात पर कि हत्यारे का पाप दूर हुआ है या नहीं उस से और पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ था जिस में यह निश्चय हुआ था कि अगर हत्यारे के हाथ की मिठाई श्रीविश्वनाथ जी के नन्दी जी खा लेंगे तो समझा जायगा कि पाप दूर हो गया है।

कहते में हृदय काँपता है कि इस समय हत्यारे के हाथ से नन्दी जी ने पेड़ा खा लिया था। ये बातें तो सभी को मालूम हैं।

दूसरा—हाँ,

ऐसा अचरज आज तक सुना न देखा मित्र,
मर्यादा है जा रही, आया समय विचित्र।
लोगों की श्रद्धा घटी, द्विज का घटा प्रताप,
नीच जाति ऊँची बनी, फैल रहा है पाप।
है यह तुलसीदास की महाबुरी करतूत,
ब्राह्मण कुल घाती यहाँ आया क्रूर कपूत।
राम नाम की आड़ में करता अनुचित कर्म,
सिद्धि दिखा कर योग की, नष्ट कर रहा धर्म।
इसका उचित उपाय, शीघ्र दयानिधि! कीजिये,
वरना फिर तो हाय, ब्राह्मण-कुल डूबा अभी।

पहला—काशी के सब पंडितोंने व्यवस्था दे दी है कि ऐसे ब्राह्मण-कुल-घाती, धर्मनाशक, धूर्त, जादूगर की गरदन भी काट ली जाय तो कोई हर्ज नहीं। कई तांत्रिक इस पर मारण का प्रयोग भी कर रहे हैं आप भी कुछ सहायता कीजिये तो बड़ा उपकार हो।

पियू०—हाँ। अच्छा, (एक नोकर से) भेज दो हमारे यहाँ के चार गुंडों को जो भड़ुवे का सब माल लूट लें और सिर काट कर गंगा जी में बहा दें। (ताली पीट कर, हाथ नचा कर और गरदन मटका कर) चलो छुट्टी भई। मैं भी चलती हूँ। सब चलो, लाना तो मेरे मजीरे। (मजीरे लेकर लड़खड़ाते हुए जाते हैं, और लोग पीछे पीछे जाते हैं)

सीन २

गङ्गा जी का रास्ता

(मेघा भगत की स्त्री बुधना और उसकी सहेली का प्रवेश)

बुधना—यही तो मुझे अचरज है। वे तो गुसाईं जी के यहाँ अकसर जाया ही करते हैं, उनकी रामायन गाया ही करते हैं। भला यह रूप और यह बैरागीपन! एक बार बिना परीक्षा किये मेरा तो जी न मानेगा। आज ही उन से पूछ कर जाऊँगी। जिसके एक बार देखने से ही मन हाथ से निकल जाय—

सहेली—ये बातें ठीक नहीं। बैरागीपन का सम्बन्ध न उमर से है और न सूरत से, बल्कि मन से है, जैसे ध्रुवजी और प्रहलादजी को हुआ, या विश्वामित्र और बाल्मीकि जी को हुआ। ऐसे सच्चे साधू को देख के,

प्यारी बुधना, मन को हाथ से खो बैठना भारी भूल है। परीक्षा के बहाने साधू के साधूपन में बट्टा लगाने का जतन करना अपने आप को नरक में डुबाना है। ऐसी बातें मत कर। तेरा जो धरम का पति है उसकी ओर से छिन भर के लिये भी मन न हटा, परीक्षा के बहाने दूसरे पुरुष को अपने जी में मत ला।

सन्त भेख भगवन्त हैं, सदा पूजने जोग,
कुलटा नारी चाहतीं, उन से करना भोग !
तेरा पति मेघा भगत, सभी जगह सरनाम,
नाम डुबाना चाहती, करके खोटा काम !

बुधना—

गया दिल हाथ से मेरे, लगी है आग तूफ़ानी,
चलो अब ले चलो मुझ को, जहाँ हो प्रेम का पानी।

सहेली—(आप ही आप) यह यों न मानेगी, इसकी खिल्ली उड़ानी चाहिये। (प्रकट) चल हट कलूटिया।

बुधना—(तेज़ हो कर) तुम कलूटिया कह कर मेरी हँसी उड़ाती हो ! आफ़सोस ! भला सोचो तो, हम काले हैं तो क्या हमारे दिल नहीं है ? या हमारा ईश्वर नहीं है ? क्या अपने रंग के ही कारन हम सभी तरह से निकम्मे और गये गुज़रे हैं ? क्या प्रेम के मन्दिर में, जहाँ सूझती हुई आँखों वाला भी अन्धा हो जाता है,

घुसने के लिये कालों को हुक्म नहीं? क्या काले ऐसे अछूत हैं? क्या अचरज की बात है कि गोरे लोग कालों को चाहे जितना बुरा भला कहलें, कालों पर जितना चाहें ज़ुल्म करलें मगर तो भी उनका कोई कसूर नहीं समझा जाता, और काले बेचारे अगर डर कर, हाथ जोड़ कर, गिड़गिड़ा कर, किसी तरह अपने मन की बात कहें या न भी कहें तो भी सिर्फ़ अपने रंग की वजह से ही हमेशा कसूर वार समझे जाते हैं, गोया ईश्वर ने उन्हें काला रंग क्या दिया जनमभर के लिये ग़ुलामी का पट्टा दे दिया! क्या झूठी दुनिया रह गई है! बहिन, ज़रा याद तो करो कि एक दिन भगवान भी काले रंग में रंग कर हमारे साथ कैसी आँख-मिचौनी खेले थे!

सहेली—अजी वाह उस्तानी जी, तुम तो जरा सी बात में बुरा मान गईं। देखो, मैं तो हँसी करती थी हँसी। तुम्हारा रंग ऐसा है तो क्या हुआ तुम में और किसी बात की कमी थोड़ही है, और तुम खूब जानती हो कि काला नमक पेट की बीमारियों में वैद् लोग—

बुधना—चलो हटो, मुझे ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती।

सहेली—सच कहती हूँ कि अगर अँधेरे में तुम्हें कहीं अकेली देख पावे तो दुनिया भर में सब से गोरी जो बिजली है वह भी तुम्हारे ऊपर टूट पड़े। तुम क्यों किसी

ऐसे वैसे भिखारी की तरफ़ निगाह दौड़ाती हो? तुम्हारे पास तो वह नमकीन तरातर माल है कि भूखे टूटे और अकालके मारे एक तो क्या, सैकड़ों भिखारी आप से आप दौड़े चले आवेंगे। सखी यही देखा जाय है कि प्यासा ही कुवे के पास आवे है, उलटा कुवे का प्यासे के पास दौड़ कर जाना एक अनहोनी सी बात है।

बुधना—

(गाना)

जाओ सखी बातें न हम से बनाओ,
बातें न हम से बनाओ, हाँ सखी
हमको न ज्ञनवा सिखाओ; जाओ सखी०
जगी प्रेमकी जोत है दिल में
उसको न योंही बुझाओ; जाओ०
खिला प्रेमका कमल हिये में
उसपर न पाला गिराओ; जाओ०
डोर प्रेमकी है यह प्यारी
इस पर न कैंची चलाओ; जाओ०।

सहेली—अच्छा तो योंही सही।

(प्रवेश मेघा भगत का; दोनों सकपकाती हैं)

मेघा—(माला जपता हुआ) राम राम सीताराम सीताराम। (बुधना से) अभी तक तुम घर नहीं पहुँची ; यहाँ क्या बातें कर रही हो ? सीताराम सीताराम।

बुधना—अब जाही रही हूँ। नेक एक बात कर रही थी। तुम भी अपनी राय दो।

मेघा—कौनसी बात ? सीताराम सीताराम—

बुधना—(सहेली की तरफ़ इशारा कर के) यह कह रही है कि अगर अपना पति किसी ऐसे काम के लिये कहे जो अपनी मरज़ी के ख़िलाफ़ हो तो उसे टाल देना चाहिये ; (सहेली हैरानी और ताज्जुब की निगाह से बुधना की तरफ़ देखती है) मगर मेरा कहना यह है कि पति अपना परमेश्वर है—बुरा भला जो कुछ भी वह कहे उसे आँख मींच कर करना नारी का धर्म है। पति की राय पर अपनी राय चलाने से नरक होता है, इस लिये तन मन धन सभी को हर तरह से पति के अधीन समझ कर सदा उसके चरणों की धूल बन कर रहना चाहिये और कभी भी उसकी ज़रासी बात भी न काटनी चाहिये। (सहेली की तरफ़) ये मेरी बात नहीं मानतीं। (सहेली ताज्जुब करती लेकिन चुप रहती है)

मेघा—(हँस कर) तेरी राय ठीक है। सीताराम सीताराम—

बुधना—हाँ, सो ही तो मैं कहती हूँ।

मेघा—तो चला अब घर—रोटी-पानी को देर हुई जा रही है।

बुधना—तुम चलो, मैं अभी आती हूँ ; ज़रा इन से दो बातें करलूँ। (सहेली बुधना को नोचती है ; एक तरफ़ 'सीताराम' कहता हुआ मेघा भगत और दूसरी तरफ़ उसे जाता देखती हुईं और मुसकराती हुईं वे दोनों जाती हैं)

(प्रवेश फकीर ख़ानख़ाना का)

ख़ान०—अहा! यही काशी पुरी है जहाँ सिद्धों ने डेरा जमा रक्खा है। (प्रवेश एक बनारसी का) क्यों भाई, यहाँ गोस्वामी—

बनारसी—का हो भैया, गोस्वामी माधौ दास—

ख़ान०—नहीं, गोस्वामी तुलसी—

बनारसी—हाँ, गोस्वामी टीकमलाल—

ख़ान०—तुलसीदास—

बनारसी—साड़ी, दुपट्टा, कपड़ा, खिलौने, पीतलके वर्तन, ठठेरी बाज़ार, विश्वनाथ जी के—

ख़ान०—यहाँ महात्मा तुलसीदास जी की—

बनारसी—हाँ कचौड़ी गली में—मैं—

ख़ान०—अरे बाबा, मैं कुछ कहता हूँ तू कुछ सुनता है!

बनारसी—दलाली में बस यही नफ़ा है। तुम्हारा काम मैं करा दौंगा। सब सामान दिलवा दौंगा।

ख़ान०—(हँस कर) यहाँ पागल ख़ाना—

बनारसी—हाँ, दालकी मंडी। मैं ले चलौंगा।

ख़ान०—साधुजन कहाँ रहते हैं?

बनारसी—जहाँ काई भला आदमी नहिना—

ख़ान०—राम चरित मानस के लेखक—

बनारसी—मानसरोवर में ? मैं पहुँचा दौंगा।

ख़ान०—यहाँ के सब से मशहूर साधु—

बनारसी—मघई पान ? मैं दिलवा दौंगा। दलाली नहीं लौंगा।

ख़ान०—यहाँ राम लीला—

बनारसी—हाँ, मैं दिखला दौंगा, महफ़िल और नाच, नाटी इमली का भरत मिलाप।

ख़ान०—तुम्हारे यहाँ क्या काम होता है ?

बनारसी—गाँठ काटना, पहले घरवालों की, फिर बाहर वालों की।

ख़ान०—अरे तो बाबा—

बनारसी—पहले दलाली रक्खो, फिर बात करो।

ख़ान०—(हँस कर) अरे यार, फ़कीरों से भी दलाली !

ए रहीम दर दर फिरें, माँगि मधुकरी खाहिं,
यारो यारी छोड़िये वे रहीम अब नाहिं।

बनारसी—चलो हटो तुम्हें कुछ लेना न देना—चले आये कोरे बाबाजी बन कर। (गया)

ख़ान०—अरे ! यह काशी और ये इसके निवासी !

(गाना)

लख घट घट में तू राम राम ;
 जड़ चेतन रूप धरे ललाम—लख घट०
क्या है अपना और पराया,
बाजीगर ने खेल दिखाया,
 झूठ समझ धन, धरा, धाम—लख घट०
खाना पीना रोना गाना,
है जीवन का ताना बाना,
निशि दिन प्रभु का सुमिर नाम—लख घट०।

(गया)

सीन ३

रात का वक्त ; तुलसीदास जी की कुटी।

(प्रवेश बुधना का)

बुधना—अहा, क्या जल्दी चकमे में आये हैं। हूँ न मैं असली बनारसिन। गुसाईं जी महाराज की परीक्षा लेने की बात कहते ही झट कह दिया कि "जा"। अजी, मन की मुराद पाई। भेष भी मैं ने कैसा बदला है कि घर वाले भी न पहचान सकें। (कुटी के

दरवाजे पर कान लगा कर) मालूम होता है महाराज सो गये, जगाना पड़ेगा—क्यों नहीं ?

यह वह भिख-मंगा नहीं, जो योंही फिर जाय,
विना लिये जाऊँ नहीं, करिये लाख उपाय।

(अपनी फूलों की माला देखती हुई)

(गाना)

प्यारी फूलों की माला, कैसी बनी है आला।
प्यारे रूप सुगन्ध लुभाये,
तुझ पर मधुकर हैं घिर आये,
तू ने सबके चित्त चुराये,
तेरा ढंग निराला—कैसी०

तु०—कौन है भाई बाहर ?

बुधना—भिखारी।

तु०—भिखारी जी, इस समय क्या चाहते हो ?

बुधना—प्रेम।

तु०—क्या कहा ? शायद तुम रास्ते में भटक गये—

बुधना—(धीरे से) अब आपको भटका दूँ तब नाम।

तु०—इधर से उस जगह को रास्ता नहीं जाता।

बुधना—प्रेम नगर, प्रेम नगर।

तु०—अजी वाह भिखारी जी, आप तो बड़ी अच्छी जगह जाना चाहते हैं। मगर यहाँ तो देखिये—यह अस्सी है और

उस पार राम नगर है—प्रेम नगर नहीं। (हँस कर) हाँ श्रीराम के प्रेम नगर का कुछ पता यहाँ भी मिल सकता है।

बुधना—तनिक बाहर तो आइये।

तु०—(बाहर आ कर) कहिये क्या दूँ। (गौर से देख कर और चौंक कर) हे माता, तू कौन है? यहाँ रात में क्यों आई है?

बुधना—मैं प्रेम की भिखारिन हूँ (तुलसी का एक हाथ पकड़ कर) प्यारे, क्या तुम मुझे निराश करोगे?

तु०—(हाथ छुड़ा कर) धिक्कार है तुझ को जो तू क्षणिक भोगों की खातिर पाप बटोरती फिरती है और दूसरों को भी नरक में भेजना चाहती है!

बुधना—यह रुखाई—

तु०—क्या तेरा पति नहीं, जो तू संसार भर को अपना पति बनाना चाहती है! मरने के बाद तेरा बुरा हाल होगा, और मरने के पहले लोक-हँसाई होगी। कुछ तो सोच।

घुल रही जल में समय के, रूप-मिसरी की डली,
कल ही मुरझाने को है, जो आज खिलती है कली।

बुधना—(आप ही आप) क्या यह सच है?

तु०—(गौर से देख कर) ओहो! तू तो भक्तराज मेघा की सती साध्वी धर्म-पत्नी है! (बुधना शरमाती है) हे माई,

(पैर छूते हैं) भेष बदल कर इस समय यहाँ कैसे आई? मेरे लिये क्या लाई? माता, बोलती क्यों नहीं, कुछ आज्ञा क्यों नहीं देती? पुत्र के सामने माता का चुप रहना अचरज की बात है।

बुधना—(लज्जित होकर पैरों पर गिरती हुई) हाय, मैं ने यह क्या किया। (रोती है) छिमा कीजिये महाराज, छिमा कीजिये। मुझ से बड़ा अपराध हुआ। मैं ने बड़ा पाप किया जो अपने को चंचल मन के अधीन होने दिया (आँचल से मुँह ढक कर रोती है) हाय।

तु०—कुछ परवा नहीं, कोई अचरज की बात नहीं। तू अब अपने मन को न दुखा और अपने को न धिक्कार। मन का धर्म ही चंचलता है। जाओ, जाओ माता, बेफ़िक्र जाओ। तुम महा पतिव्रता हो यह मैं ख़ूब जानता हूँ। क्षण भर के लिये तुम्हें मोह हो गया था, इसी से तुमने धोखा खाया। जाओ, अब ऐसा कभी नहीं होगा।

बुधना—(हाथ जोड़ कर और पैर छू कर) महाराज धन्य है, आज मेरे भाग जागे।

चाह थी झूठे की, सच्चा प्रेम मुझ को मिल गया,
वासना को छोड़ कर परमात्मा पर दिल गया;

धन्य यह जीवन हुआ, यह तन हुआ, यह मन हुआ,
बरसते ही भक्ति-घन बंजर भी वृन्दाबन हुआ।

(गई)

(तुलसीदास जी कुटी में जाते हैं ; दो चोर आकर कुटी के चारों ओर घूमते हैं, मगर जिधर जाते हैं उधर ही राम-लक्ष्मण को, तीर कमान लिये हुए, पहरा देते देखते हैं ; आखिर अचरज कर के जाने लगते हैं; खटका सुन कर तुलसीदास बाहर आते हैं, चोर भागते हैं ; राम-लक्ष्मण अन्तर्धान हो जाते हैं।)

तु०—यह कैसा खटका हो रहा था ! (चोरों को भागता हुआ देख कर) अरे यहाँ आओ, यहाँ आओ। अरे डर की कुछ बात नहीं है आओ, तुम्हें सौगन्ध है ; आओ आओ। (चोरों का आना) बतलाओ तो कि तुम हो कौन ? क्यों आये थे, और अब क्यों भागे जाते हो ?

एक—हम लोग चोर हैं, हम को गुशाइयों ने आपके यहाँ चोरी करने भेजा था, मगर अभी हाल जिधर हम गये उधर ही हम ने दो बालकों को आपकी कुटी का पहरा देते देखा।

तु०—बालकों को !

दू०—अहा, क्या ही सलौने सरूप थे ! क्यों महाराज वे दोनों कौन थे ? बारह तेरह बरस की उमर रही होगी। एक साँवरा और दूसरा गोरा रहा।

प०—दोनों के हाथों में कैसे सुन्दर तीर-कमान थे !

तु०—(एक दम चौंक कर) यह क्या ? (खुशी के साथ) हे कौशल्या-नन्दन, इस दीन को आपने इतना अपनाया कि इसके यहाँ पहरा दिया ! (चोरों का अचरज करना) धिक्कार है, इस धन और सम्पदा को धिक्कार है ! (चोरों को गले से लगा कर) तुम चोर नहीं देवता हो जो तुम्हें प्रभुका प्रत्यक्ष दर्शन मिला। तुम धन्य हो। लो चलो कुटी में और ले जाओ जो कुछ तुम्हें लेना हो।

च०—महाराज, हमें कुछ नहीं लेना। हम आज से चोरी नहीं करेंगे।

तु०—हा ! प्रभुने मुझ पापी के लिये इतना कष्ट उठाया ! चलो, चलो, तुम नहीं लेते हो तो लुटा दो गरीबों को। (कुटी में गये)

सीन ४

स्थान काशी—एक रास्ता

(रत्नावली का प्रवेश)

रत्ना०—हे विश्वनाथ, तू ने स्त्रियों के मन को इतना कमजोर क्यों बनाया है ? स्वामी ने मना कर दिया था फिर भी मुझ से न रहा गया। अरे निर्बल हृदय, तनिक से सुपने से घबड़ा कर तू मुझे यहाँ ले आया ! न जाने वे क्या कहेंगे। हे भगवान, उनके दरशनों के समय मेरा यह शरीर छूट जाय। अगर वे एक बार

इधर देखले—क्रोध या उदासीनता से ही देखले—तो भी यह छाती ठंडी हो जाय। चलूँ, स्वामी की कुटी पर पहुँचने का उपाय करूँ। विन्ध्य देश के राजा और रानी भी उन्हीं के दरशन करने आये हैं, उन लोगों के साथ ही जाना ठीक होगा। (गई)

(वैद्य और उसके शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—तो क्यों गुरुजी, क्या इस महामारी की महामरी का कोई इलाज ही नहीं?

वैद्य—यह रोग प्रारम्भ से ही कष्टसाध्य है; इसको असाध्य ही समझना चाहिये।

शिष्य—कितनी देर तक कष्टसाध्य है, और फिर कितनी देर बाद असाध्य हो जाता है?

वैद्य—आठ दश घटिका पश्चात्।

शिष्य—क्या हरेक बीमार की जाँघ, बगल या गरदन में गिल्टी उठना आवश्यक है?

वैद्य—गिल्टी दो प्रकार की होती है—एक भीतरी, एक बाहरी।

शिष्य—इस में मृत्यु इतनी जल्दी क्यों हो जाती है?

वैद्य—इसका एक विशेष कारण है, अबके कोई रोगी आया तो बतादेंगे।

शिष्य—ईश्वर ने इस महामारी के बहाने मानों काशी निवासियों के ऊपर मौत का एक पहाड़ डाला! हा खेद, हरा भरा बगीचा उजाड़ डाला!

वैद्य—अरे मूर्ख, तू वैद्यक सीखता है और लोगों के मरने पर खेद प्रकट करता है। बेटा, यह इसी रोग की बदौलत है कि हम-तुम सरीखे पंसारी भी वैद्य बन बैठे हैं। और काशी हो या प्रयाग—जितनी जिसकी आयु है उससे अधिक कौन जी सकता है? दूसरे, काशीवालों में ही ऐसी क्या विशेषता है? ये लोग क्या कुछ कम पापी हैं?

शिष्य—आख़िर इसका इलाज भी कुछ है?

(प्रवेश सुधुआ का)

गुरु—भाग्य!

सुधुआ—वैद्यराज जी, मेरे ऊपर दया कीजिये, ज़रा चल कर—

वैद्य—नहीं भाई—मैं नहीं जाऊँगा, यह बीमारी उड़कर लगती है।

सुधुआ—महाराज, एक तो भगवान का कोप, और उसी पै आप लोगों का भी कोप हुआ तो गरीब तो बिना मौत मरे न? महाराज, दया कीजिये, मैं कई वैद्यों के पास हो आया हूँ, गुरुजी तो नहीं दिखाना चाहते हैं, हमीं लोगों का जी नहीं मानता।

वैद्य—वहाँ गुरुजी नहीं दिखाना चाहते तो यहाँ भी गुरु जी नहीं देखना चाहते, मगर, फ़ीस मिलेगी तो देख लेंगे।

शिष्य—(अलग) धिक्कार है समतिक्त कषाय सरीखी इस कड़वी वाणी को।

सु०—महाराज, हम लोग—

वैद्य—संसार में गरीब के लिये जगह नहीं—वैद्यक में गरीबों के लिये इलाज नहीं।

शिष्य—(आप ही आप) तो धिक्कार है ऐसी वैद्यक को।

सु०—मेरे पास—

वैद्य—तो मेरे पास भी कुछ नहीं ; लाचारी है।

शिष्य—(आप ही आप) धिक्कार है इस रुखाई को।

वैद्य—(शिष्य से) अरे मूर्ख, इतनी देर से क्या बुड़बुड़ा रहा है ? घोड़ा घास से यारी करे तो खाय क्या ? भला यह तो बता।

शिष्य—इसलिये गुरुजी, साधु लोग हैं, मुफ्त में ही सही।

वैद्य—(शिष्य से) तू बड़ा मूर्ख है।

शिष्य—महाराज, बड़े तो आप ही हैं। (गये)

सीन ५

(तुलसीदास मृत्यु-शय्या पर ; कुछ लोग बैठे हैं)

तु०—तो समझो भाई बुधुआ, यह तो शरीर के साथ एक शाप है कि यह छोड़ने ही के लिये ग्रहण किया जाता है। इसके छूटने का शोक न करना चाहिये। मिट्टी का खिलोना टूट कर मिट्टी में मिल जाय, या बरसात का पानी बह कर नदी में ग़ायब हो जाय तो इस में शोक और अचरज की कौन सी बात है? और यों सच पूछो तो न हमारी मृत्यु होती है और न तुम जीते हो। (सब चुप रहते हैं)

बुधुआ—(आँसू पोंछता हुआ) महाराज, आपकी बाँह का दर्द अब कैसा है?

तु०—बाँह का दर्द भी अच्छा है और हम भी अच्छे हैं—भले चंगे, तुम कोई फ़िक्र मत करो। भगवान का ध्यान करो, उसी से लौ लगाओ।

(प्रवेश सुधुआ के साथ वैद्य और शिष्य का)

वैद्य—कहिये महाराज क्या हाल है?

तु०—महाराज, हाल मज़े का है, अब आप अधिक कष्ट न उठाइये। (लोगों से) भाइयो, जाने और अनजाने जो कुछ दोष मुझ से बन पड़े हों क्षमा करना।

एक—महाराज, आप यह क्या कहते हैं! आप हम को उलटा लज्जित करते हैं।

दूसरा—कृपा कर कोई ऐसा एक साधन बतलाइये जिससे हमारी गति सुधरे।

तु०—अगर तुम किसी का बुरा न चाहोगे तो तुम्हारे साथ भी बुराई करने को हिम्मत किसी को न पड़ेगी; और अगर कोई करेगा भी, तो उसका फल पावेगा। बुराई के बदले भलाई एक ऐसी कड़ी मार है जिस से दुश्मन कभी नहीं पनपता। अगर तुम बुराई के बदले में भलाई करने में अपने को असमर्थ पाओ तो बुरे लोगों से सम्बन्ध त्याग दो, उन से असहयोग करो, उन से किसी तरह का कोई सरोकार न रक्खो, वे जो कुछ कष्ट तुम्हें दें उसे चुपचाप सह लो। ऐसा करने से तुममें वह आत्मिक बल आ जायगा जिसके सामने पशु-बल के पैर उखड़ जायँगे। बिना स्वयं कष्ट झेलें सुख नहीं मिलता—'बिना स्वयं मरे स्वर्ग नहीं दीखता'।

तीसरा—महाराज, दुनिया में कैसे निबाहा जाय?

तु०—जो काम करो वह सत्य के आधार पर करो, फलकी परवा न करके करो, और परमात्मा को अर्पण करके करो। जो काम अपना कर्तव्य या धर्म समझ कर किया जाता है उसके भले बुरे नतीजे की ज़िम्मेदारी ईश्वर पर है। चाहे कैसी भी अपत्ति आवे यह बात कभी न भूलो

कि ईश्वर जो कुछ करता है हमारे भले ही के लिये करता है। वह न्याय कारी है। जिस में हम को बुराई दीखती है उस में भी न जाने कितनी भलाई छिपी रहती है। हम उसे नहीं देख सकते मगर परमात्मा सब देखता रहता है। किसी को नीच या अछूत समझने से बढ़ कर दूसरा पाप दुनिया में नहीं। धर्म या प्रथा के नाम पर स्थापित किये गये झूठे ढकोसलों का परदा हटाकर अपने भाइयों को पहचानो, उनसे मिलो और उस बलवती जातीयता की स्थापना करो जिस से तुम धार्मिक, नैतिक और राजनैतिक विषयों में सारे संसार का शासन कर सको। जब तक झूठे बन्धन और अभिमान दूर न होंगे, जब तक एका न होगा तब तक सुराज्य या स्वराज्य के सुख न भोग सकोगे। समय ने पलटा खाया है, इसकी गति पहचानो और उसी के अनुसार कार्य करो।

सब—धन्य है महाराज।

तु०—सुख मिलता हो तो यह समझ कर कि हमारा कोई पुराना पुण्य क्षीण होरहा है खुशी के मारे आपे से बाहर न हो जाना चाहिये, और दुःख में यह समझ कर कि कोई बड़ा भारी पाप क्षीण हो रहा है, धीरज रखना चाहिये।

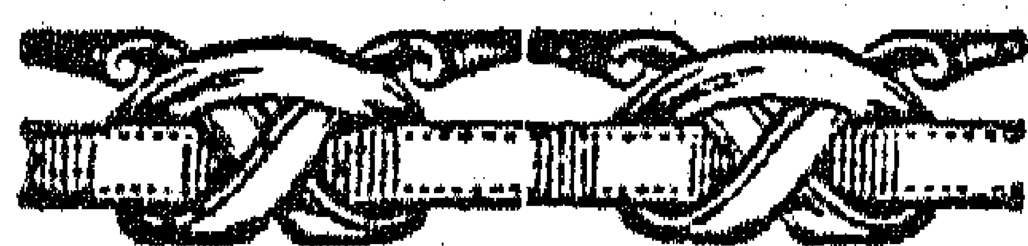
सब—धन्य है, धन्य है।

तु०—बस,

राम नाम जस बरनि के, भयौ चहत अब मौन,
तुलसी के मुख दीजिये, अबहीं तुलसी सौन।

(बुधुआ गंगा जल और तुलसी दल मुँह में डालता है, उसी समय राजा, रानी, कुंवर, रत्नावली और खानखाना आते हैं)

खान०—(अचरज से) अरे ! यह क्या ! (तुलसीदास जी का शरीर छू कर, छाती पर हाथ रख कर, घबराहट की निगाह से देखता है, रत्नावली सब बात समझ कर एक बार दुःख की निगाह से चारों ओर देख कर पैरों की ओर गिर जाती है और प्राण छोड़ देती है। सब ताज्जुब करते हैं कि यह माई कौन थी ; ऊपर से फूल बरसते हैं ; सब 'धन्य' 'धन्य' कहते हैं।)



समाप्त